दाण-सारो

(दान सार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्तचक्रवर्ती
क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

लेखक :

आचार्य वसुनंदी मुनि

ग्रंथ : दाण-सारो (दान सार)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रंथकार : प्राकृत भाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदिनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2025)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-43-9**

मूल्य : **₹55/-** (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

प्राकृतिक स्वभावमें रहना प्रत्येक द्रव्यकी नियति है, लक्षण है, धर्म है। प्रकृति त्यागधर्मा है। बिना त्यागके संसारमें किसी भी जीव वा द्रव्यकी स्थिति सम्भव नहीं है। क्योंकि सभी द्रव्योंका स्वभाव पर्यायापेक्षया परिवर्तनशील है। द्रव्योंमें द्रव्यत्व गुणके कारण निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। सभी द्रव्य अपनी पुरातन पर्यायको छोड़कर नूतन पर्यायको ग्रहण करते हैं। पुरातनका त्याग करना ही नूतनके आगमनका सम्मान करना है। वृक्ष भी अपने पुराने पत्तोंको छोड़ते हैं तभी नूतनकोंपल, पत्र, पुष्प, फलोंको प्राप्त करते हैं। उस परमत्याग धर्मकी प्राप्ति हेतु निर्ग्रन्थ साधक उभय परिग्रहका त्याग कर निःसङ्ग व निर्ग्रन्थ हो जाते हैं। तब उनकी वह त्याग साधना उन्हें सिद्धत्वकी अवस्था प्रदान करनेमें समर्थ होती है। उन निर्ग्रन्थ साधकों, जिनाराधकों, आत्मोपासकों, स्वपरहितकारकों, भवबंधनवारकोंके लिए यथायोग्य स्वयंके सहजोपलब्ध द्रव्यका त्याग कर श्रावकजन उनकी साधनामें सहायक बनते हैं।

श्रावकोंके आदि कर्त्तव्योंमें दान-पूजादिका विधान किया गया है। ये कर्तव्य बिना त्यागके असम्भव हैं। सत्श्रद्धालु, विवेकशील एवं सदाचारमें रत सद्गृहस्थ एवं श्रावकोंके द्वारा सुपात्रोंको आहार, औषधि, ज्ञान, वसतिका व संयम साधनामें सहयोगी उपकरणोंका जो दान दिया जाता है; उसके माध्यमसे श्रावकजन मोक्षमार्गमें अविरल रूपसे द्रुतगामी

गति करते हैं। उनकी साधनाका एक अंश श्रावकोंको भी पुण्यके रूपमें प्राप्त होता है और वे सद्गृहस्थ व श्रावक भी उपचारसे अंशतः मोक्षमार्गी कहे जा सकते हैं।

दान देनेसे सद्गृहस्थ व श्रावकोंका उस द्रव्यके प्रति मोह, मूर्च्छा व ममत्वका त्याग होनेसे वे श्रावकगण अशुभ आस्रव व पापबन्धसे भी बच जाते हैं। अशुभास्रवके हेतुओं व पापबन्धके कारणोंका त्याग ही अहितके मार्गसे बचना है तथा सत्पात्रोंको स्वन्यायोपार्जित द्रव्यका दान देनेसे सद्गृहस्थोंकी भावना निर्मल होती है, चैतन्य परिणामोंमें विशुद्धिका आविर्भाव होता है। सातिशय पुण्यका आस्रव होता है, अभूतपूर्व आनन्दकी अनुभूति होती है। मोक्षमार्ग व आत्महितके प्रति चैतन्य प्रदेशोंमें अप्रतिम भाव निष्पन्न होता है। वे विशुद्ध परिणाम ही निष्काङ्क्ष पुण्यको प्रदान करते हैं। निष्काङ्क्ष पुण्यको परम्परासे व साक्षात् मोक्षका हेतु भी कहा जा सकता है।

दान बिना न तो श्रमणजन अपने धर्मका यथार्थ पालन कर सकते हैं और न ही श्रावकोंके धर्मकी कल्पनाकी जा सकती है। सुपात्रोंको दान देने वाला उत्तमदाता श्रमण व श्रावक धर्मके पालनेके लिए धुराकी तरह होता है। जिनशासनरूपी रथके श्रावक व श्रमण रूपी दो चक्र हैं। इन दोनों–चक्रोंको आपसमें जोड़कर रखने वाली और दोनोंको समीचीन रूपसे सञ्चालन करने वाली यह दान रूपी धुरा ही होती है। उस दान रूपी धुरामें श्रद्धा व भक्ति रूपी स्निग्धता होती है तो दोनों चक्र द्रुतगतिसे गमन करते हैं।

अहङ्कार, छल-कपट वा मान-सम्मानकी काङ्क्षाकी रुक्षता दान रूपी धुरा पर यदि जम जाती है तो जिनशासनका रथ मन्द गतिसे चलता है और पहिये खड़-खड़की आवाज करने लगते हैं। तब एक-दूसरेके पूरक धर्मचक्र विरोधीसे प्रतिभासित होने लगते हैं। फिर एक चक्र दूसरे चक्रको दोष लगाने लगता है।

पूज्य आचार्य गुरुवरने दानकी महिमाको स्वपरहितके कल्याणकी भावनासे लिप्यासनपर वर्णवर्तिकाके माध्यमसे भावनिःसृत अक्षर समूहोंको स्थापित किया है। दान ही वह परम्परा है जो श्रमण व श्रावकोंको एक-दूसरेसे जोड़े रखती है। **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'** के अनुसार श्रावक द्वारा प्रदत्त दानसे श्रमण अपनी निराकुल साधनामें सङ्लग्न रह पाते हैं और श्रमण द्वारा श्रावकके दानको स्वीकार करनेसे वह दान उसे संसारसुख व परम्परासे मोक्षका कारण भी बनता है। कहा भी है-

'दानं पारंपर्येण मुक्ति कारणं।' दान परम्परासे मुक्तिका कारण है।

परमपूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य गुरुवर श्री वसुनन्दी जी मुनिराजमें एक दार्शनिक, एक समाजसुधारक, धर्म प्रचारक, गम्भीर साहित्य सृजक, अनुशासक, तपस्वी, अर्हद्रूपधरकी छवि एक साथ परिलक्षित होती है। दोनों धर्मोंको स्थायित्व प्रदान करने वाले 'दान' के विषयमें आचार्यश्रीने 'दाण सारो' नामक ग्रन्थकी रचना कर वर्तमान पीढ़ीको दानकी महिमा बताकर उन्हें उनके धर्ममें

स्थायित्व प्रदान करनेका जो श्लाघनीय कार्य किया है वह सदैव अभिनन्दनीय है।

ग्रन्थके अन्तर्गत आचार्यश्रीने दानके स्वरूप, लक्षण, भेद, दाताके गुण, भूषण, दूषण, नवधाभक्ति, शुद्धि इत्यादिका विस्तृत वर्णन किया है। मानो यह ग्रन्थ दाताओंके लिए मार्गदर्शक स्वरूप ही हो। आचार्यश्री सदैव कहते हैं कि जीवनोपयोगी, आत्मकल्याणकारक नीतियाँ कहते रहें, उसका प्रभाव आज नहीं तो कल अवश्य ही पड़ेगा। ग्रन्थ रूपी स्वाति नक्षत्रकी जलबिन्दु किस भव्यजीवके चित्त रूपी सीपमें जाकर अपना स्थान लेगी, वहाँ कर्त्तव्यबोध, निष्काङ्क्षपुण्यत्वके मोती उसके जीवनको क्रमशः मोक्षसुखकी चमकसे दीप्तिमान् कर देंगे।

इस ग्रन्थका वाचन सरधनामें डॉ. श्रेयांस जी बड़ौत, पं. विनोद शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य जयकुमार निशान्त, डॉ. अनिल भैया जी, डॉ. नरेन्द्र कुमार जी, डॉ. पुलक गोपल व डॉ. आशीष बमौरी एवं प्रतिष्ठाचार्य मनोज शास्त्रीकी उपस्थितीमें हुआ। उन सभी विद्वत्गणोंको सम्यग्ज्ञानमें श्लाघनीय अध्यवसाय हेतु पूज्य आचार्य गुरुदेवका शुभाशीष।

जो स्वयं श्रुतदेवता रूप हैं उन आचार्य गुरुदेवके ग्रन्थोंके सम्पादनका साहस यद्यपि मुझ अल्पबुद्धिमें नहीं है तद्यपि यह सम्पादनकार्य जो हमारे द्वारा किया जा रहा है यह पूज्य आचार्य गुरुदेवका ही प्रासाद समझना चाहिए। यदि प्रमादवश कोई त्रुटि रह गई हो तो नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक

दृष्टिसे ग्रन्थाध्ययन करते हुए विज्ञजन मुझे क्षमा करें।

ग्रन्थवाचनमें सहयोगी सभी विद्वत्गणों एवं मुद्रण, प्रकाशन आदिमें सहयोगी सभी महानुभावोंके लिए पूज्य गुरुदेवका शुभाशीष! आचार्य गुरुवरका उत्तम स्वास्थ्य हम सभीको वरदानके रूपमें प्राप्त हो, उनकी संयम-साधना, तपश्चर्या, ज्ञान इत्यादि शुक्लपक्षके शशधरके समान सदैव प्रवर्धमान व संवर्द्धित रहे। पुनः आचार्य भगवन् श्री वसुनन्दी जी गुरुवरके श्रीचरणोंमें सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

आर्यिका वर्धस्व नन्दिनी

श्रावकों पर उपकार-दाण सारो

ब्र. जयकुमार जैन निशांत

महामन्त्री अ.भा.दि. जैन शास्त्रि-परिषद्

जैनधर्म अनादिनिधन है, जिसमें तीर्थङ्करोंकी दिव्यध्वनिसे संसारके असीम दुःखोंसे छुटकारा पानेका मार्ग प्रशस्त होता है। यह उपदेश श्रमणों एवं श्रावकोंको धर्माचरणपूर्वक जीवनयापन करके जीवनको अशुभ, अमङ्गल, असातासे बचनेका उपाय बताकर उन्हें उपकृत करता है।

आचार्योंने श्रावकों द्वारा होने वाली प्रमादचर्या, पापात्मक एवं काषायिक प्रवृत्तिसे निवृत्तिका मार्ग दान एवं पूजाके रूपमें बताया है। जिसके द्वारा वह पापोंका प्रक्षालन करके मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो सकता है। यथा-

दाणं पूया मुक्खं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा।

-आचार्य कुन्दकुन्द, रयणसार

दाणं पूया सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो।

-आचार्य गुणधर-जयधवला पुस्तक 1/82

दान, पूजा, शील एवं उपवास श्रावकके मुख्य धर्म हैं जिनके द्वारा उसकी जीवनशैली परिमार्जित होती है।

गृहस्थावस्थायां दानपुजादिकं त्यजन्ति तपोधनावस्थायां।
षडावश्यकादिकं त्यक्त्वोभयभ्रष्टाः सन्तः तिष्ठन्ति तदा दूषणमेव॥

-आचार्य योगीन्ददेव-परमात्म प्रकाश 2/966

जो गृहस्थावस्थामें दानपूजादि शुभक्रियाको तथा मुनिपदमें षट्आवश्यकको छोड़ देते हैं, वह न तो श्रावक हैं और न यति हैं, वह निन्दाके योग्य ही है।

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने।।

—पद्मनंदि पञ्चविंशतिका–आचार्य पद्मनन्दि 66

श्रावकको देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप एवं दान यह षट् आवश्यक कार्य प्रतिदिन करना चाहिए।

इस प्रकार सद्श्रावकोंको दान एवं पूजाकी मुख्यताका विस्तारपूर्वक वर्णन आचार्य श्री वसुनन्दी जी महाराज ने 'दाणसारो' ग्रन्थराजमें करके परमोपकार किया है। यह ग्रन्थ जैनदर्शनकी मूल प्राकृतभाषामें गाथा छंदमें निबद्ध किया गया है। इसमें श्रावकके गुण, दाताके गुण, सोलह शुद्धि, नवधाभक्ति, दानका महत्त्व, दानकी प्रधानता, दानके भेद एवं प्रभेदोंको सूक्ष्मतासे विश्लेषित करके दानके महत्त्वको और दृढ़ किया है। इसके स्वाध्यायसे श्रावक अपनी प्रशस्त चर्यापूर्वक धर्माचरण कर जीवनको मङ्गलमय बना सकता है।

आचार्यश्रीने दानके भेद बताते हुए न्यायोपार्जित धनसे सम्यक् दानको परिभाषित किया है, जो आजके परिवेशमें अत्यंत अनिवार्य है।

सवर अणुग्गहो धम्मविड्ढी पावक्खयो सुदाणेणं।
उहयधम्मरक्खगो दु, दायगो सव्वदा मण्णेज्ज।।13।।

जैसा पूर्वाचार्योंने निर्देशित किया है, दानके बिना श्रावकत्व नहीं होता, आचार्यश्रीने भी सद्गृहस्थको कुलशुद्धि, सोलहशुद्धि, श्रावक दाताके विशेष गुण, दानके पात्र, दानके दूषण, कुपात्र दानका फल बताते हुए दानको गृहस्थधर्ममें श्रेष्ठ कहा है।

आचार्यश्रीने समस्त क्रियाविधिको सरल शब्दोंमें विस्तारसे निरूपित करके श्रावकोंका मार्ग सम्यक् रूपेण प्रशस्त किया है।

उत्तमखेत्ते समये, उत्तमविहीइ ववदि वरं बीयं।
तो लहेदि किसीवलो जह उत्तमफलं ण संकेज्ज॥102॥

तह उत्तम-दायगो वि, उत्तमदव्वखेत्तकालभावेहि।
पावदि फलं अचिंतं, वरविहीइ पत्तदाणेणं॥103॥

जिस प्रकार कृषक खेतमें सही समय एवं विधिसे उत्तम बीजका वपन करता है तो उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार उत्तम द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भावसे सम्यक् विधिसे पात्रदान करनेसे अचिन्त्य फलको प्राप्त करता है।

आचार्य वसुनन्दी महाराज ने आहारदानके साथ ज्ञानदान अर्थात् ग्रन्थ समर्पणके साथ स्वाध्याय करनेका निर्देश दिया है। औषधिदान, अभयदान एवं उपकरण दानसे श्रमण परम्पराका विस्तार, विकास एवं संरक्षणका भी उल्लेख किया है।

ज्ञानदानकी महिमाको वर्णित करते हुए आचार्यश्री ने श्रावकोंको कुशलतापूर्वक सम्यक्त्वके संरक्षणका उपाय बताते

हुए अपात्र, अशुद्ध सामग्री, अशुभ भावना एवं अनादरपूर्वक दान देनेका कुफल बताकर सचेत भी किया है।

वर्तमानमें श्रावकोंने जीवनशैलीमें अर्थको प्रधानता देकर, युवा पीढ़ीको मात्र अर्थोपार्जनका मार्ग बताकर उनका भविष्य असंयम, असंस्कार एवं धर्मविहीन कर दिया है। उनकी दिनचर्यामें देवदर्शन, देवपूजन, आहारदान गौण हो गए हैं।

'दाण सारो' ग्रन्थराज ने ऐसे भटके श्रावकोंका मार्ग प्रशस्त करनेका जो उपक्रम किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। शर्त ये है, इस ग्रन्थका सम्यक् प्रचार-प्रसार होकर जन-जन तक इसे पहुँचाकर स्वाध्यायकी प्रेरणा देना अनिवार्य है। तभी आचार्यश्रीका यह श्रम सार्थक होगा एवं जिनशासनकी प्रभावना ही नहीं दीर्घकालिक संरक्षण भी होगा, श्रावकोंका कल्याण होगा, उनके जीवनमें श्रमण परम्पराका बहुमान होगा।

पूज्यश्रीके चरणोंमें इस परमोपकारके लिए कोटि-कोटि नमोस्तु। ग्रन्थराजके प्रकाशनमें सभी सुधीजनोंका साधुवाद।

दाण-सारो (दान सार)

परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्यश्री वसुनन्दी महामुनिराज द्वारा लगभग 200 कृतियोंका सम्पादन किया गया। आप प्राकृतभाषामें कई ग्रन्थोंका लेखन कर चुके हैं और आज भी अनवरत रूपसे ग्रन्थ लेखनका कार्य चल रहा है। कुछ ग्रन्थ स्वतन्त्र रूपसे प्रकाशित किये गये हैं। आपके द्वारा लिखित ग्रन्थोंके सङ्कलनका 'प्राकृत वाणी' नामसे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। जिनका सम्पादन आपकी शिष्या आर्यिका वर्धस्वनन्दिनी माताजीने किया है और जिनका निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला समितिसे प्रकाशन किया गया। प्रस्तुत ग्रन्थ 'प्राकृत वाणी' के चार भागमें अनेक ग्रन्थोंका सङ्कलन किया है। विभिन्न विषयोंपर लिखित ग्रन्थोंका यह सङ्कलन विभिन्न पुष्पोंसे सुसज्जित एक गुलदस्तेकी भाँति चित्तको आकर्षित करने वाला है। इसके अन्तर्गत व्यवहारिक व आध्यात्मिक विषयोंके साथ जीवनमूल्योंका भी सुन्दर वर्णन है।

हाल हीमें आचार्यश्री वसुनन्दी जी द्वारा प्राकृतभाषामें लिखित 'दाण-सारो' ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थमें आचार्य श्री ने 228 गाथाओंमें दानका विस्तृत वर्णन किया है। सर्वप्रथम इस कृतिमें आचार्यश्री ने मङ्गलाचरणमें सर्वज्ञदेवको त्रियोगपूर्वक नमस्कार किया है।

दानका लक्षण देते हुए आचार्यश्री लिखते हैं–

धम्मज्झाण-णाण-तव-संजम-वदाणं च संविड्ढीए।
सगवर-अणुग्गहत्थं, सग-सुदव्व-तिप्पणं दाणं॥10॥

अर्थात् धर्मध्यान, ज्ञान, तप, संयम व व्रतोंकी वृद्धिके लिए, स्वपर अनुग्रहके लिए अपने श्रेष्ठ द्रव्यको देना दान है।

आचार्यश्रीने इस कृतिमें आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान, अभयदान अथवा वसतिकादान नामसे दानके चार भेद कहे हैं, जिनका क्रमशः विस्तृत वर्णन किया गया है।

चौदह एवं पन्द्रह नम्बरकी गाथामें आचार्यश्री कहते हैं कि जिस प्रकार कस्तूरीके बिना हरिण, भद्रताके बिना वृषभ, पराक्रमके बिना सिंह, न्यायके बिना राजा, संयमके बिना योगी, शीलके बिना स्त्री, गन्धके बिना पुष्प, शूरताके बिना योद्धा, दयाके बिना धर्म सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार सम्यक्दानके बिना गृहस्थ सुशोभित नहीं होता।

प्रस्तुत ग्रन्थमें उत्तम पात्र, मध्यम पात्र, जघन्य पात्र, दानीकी पात्रता, कुपात्रदान मोक्षका हेतु नहीं, सुपात्रदान विपुलफल दाता, आहारदानसे महापुण्य फल प्राप्ति, सुपात्रदान बिना मोक्ष नहीं, दान बिना श्रावक नहीं, पात्रदानकी महिमा, सुपात्र दानका फल, दाताके सात गुण, नवधा भक्ति, श्रावकके इक्कीस गुण, दाताके पाँच आभूषण, दाताके पञ्च दूषण, सोलह शुद्धि, पिच्छीदानका फल, कमण्डलुदानकी महिमा, उपकरणदान, वस्त्रदानका फल, दानके अतिचार आदि अनेक विषयों का वर्णन किया है।

इस ग्रन्थके अंतिम मङ्गलाचरणमें ग्रन्थकारने अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठियों एवं आचार्य शान्तिसागर जी, आचार्य श्री पायसागर जी, आचार्य श्री जयकीर्ति जी, आचार्य देशभूषण जी एवं शिक्षा-दीक्षा गुरु आचार्यश्री विद्यानन्द जी गुरुदेवको नमस्कार किया है।

ग्रन्थकी प्रशस्तिमें आचार्यश्री ने ग्रन्थ लेखनका समय एवं स्थानका भी उल्लेख किया है। प्राकृत साहित्यकी श्रीवृद्धिमें आचार्यश्री द्वारा लिखित ग्रन्थ इतिहासके पृष्ठोंमें सुशोभित होंगे।

–डॉ. आशीष कुमार जैन, बम्हौरी
सहायक आचार्य,
जैन और प्राकृत अध्ययन विभाग,
एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह (म.प्र.)
मो. 9685846161

हृदयोद्गार

ज्ञान और वैराग्यके अद्‌भुत क्षमताके धनी दार्शनिक एवं प्राकृत विचारधारासे ओतप्रोत, आत्म-विज्ञानकी प्रमुखता रखने वाले, शान्तरसकी नदी प्रवाहमें वैराग्य नौका द्वारा संसारसे पार होनेकी युक्ति देने वाले, दर्शन, प्राकृत सिद्धान्त, न्याय, अध्यात्म, व्याकरणके ज्ञाता आचार्यश्री ने अपने जीवनमें न केवल आत्मसाधनाकी उच्चतम पराकाष्ठाको छुआ, बल्कि ज्ञानके क्षेत्रमें भी अतुलनीय योगदान दिया। ''दान सारो'' ग्रन्थ, दानके बाह्य और आन्तरिक स्वरूप, उसकी शुद्धता, पात्रता और मोक्षमार्गसे सम्बन्धको जिस स्पष्टतासे उजागर करता है, वह साधकों एवं श्रावकोंके लिए अत्यन्त उपयोगी और मार्गदर्शक है।

दानधर्मकी दिव्यताको सरल भाषामें व्यक्त करना "दान सारो" ग्रन्थ, आचार्य वसुनन्दी जी महाराजकी तपःदीप्त साधना, तीव्र प्रज्ञा और आध्यात्मिक दृष्टिका अनुपम फल है। इस ग्रन्थके माध्यमसे दानकेवल एक कर्म नहीं, बल्कि आत्माकी उन्नतिका सेतु बनकर उभरता है। इसमें वर्णित सिद्धान्त, उदाहरण और व्याख्याएँ समाजको आत्म-परिष्कार और लोकहितकी ओर प्रेरित करती हैं।

मैं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी श्रमणकुल-तिलक पूज्य आचार्य वसुनन्दी जी महाराजके प्रति अपार श्रद्धा और कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस पावन साहित्यके माध्यमसे हम सभीको आत्ममूल्यांकन और लोकहितकी भावनासे ओतप्रोत

होनेका मार्ग दिखाया। आपका साहित्य केवल वाक्य नहीं, बल्कि आत्माकी आवाज है। दानकी गरिमाको आपने जिस सूक्ष्मतासे चित्रित किया है वह अभिनन्दनीय है। आपकी लेखनी सदा जन-मानसको धर्म, दया, विवेक और दानसे जोड़ती रहे।

शब्द-शब्दमें बसी वाणी, जैसे सिद्धोंकी झंकार,
आचार्यकी लेखनी सजी, है तपस्वीका उपकार।
सद्भाव, संयम, सम्यक् दृष्टि, इनसे होता उद्धार,
'दान सारो' बन गया हमारा आत्मकल्याणका द्वार॥

—नमनकर्ता

ब्र. डॉ. कल्पना जैन (प्राचार्या)
शिक्षा विभाग, तीर्थङ्कर महावीर विश्वविद्यालय,
मुरादाबाद

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
1.	मङ्गलाचरण	1-3	1
2.	धर्म लक्षण व भेद	4-5	2
3.	श्रावक धर्म	6-7	2
4.	दानकी प्रधानता	8-9	3
5.	दान लक्षण	10	3
6.	दानके भेद	11	3
7.	दानका महत्व	12-13	4
8.	दान बिना गृहस्थकी शोभा नहीं	14-15	4
9.	दान बिना श्रावक नहीं	16	5
10.	उत्तम पात्र	17-19	5
11.	मध्यम पात्र	20-21	6
12.	जघन्य पात्र	22	6
13.	सम्यग्दृष्टि अव्रती भी पुण्यरत	23-24	7
14.	अविरत सम्यग्दृष्टि भी अभक्ष्यादिका त्यागी	25	7
15.	दानीकी पात्रता	26-27	8
16.	नवधाभक्ति आवश्यक	28	8
17.	नवधा भक्ति	29	8

18.	पड़गाहन	30	9
19.	उच्चस्थान	31	9
20.	पादप्रक्षालन	32	9
21.	अर्चना	33	9
22.	प्रणाम	34	10
23.	मनशुद्धि	35	10
24.	वचनशुद्धि	36	10
25.	कायशुद्धि	37-38	11
26.	कुलशुद्धि आवश्यक	39	11
27.	पात्रदानके अयोग्य	40	11
28.	आहारजल शुद्धि	41-42	12
29.	दाताके सात गुण	43	12
30.	श्रद्धा गुण	44	13
31.	भक्ति	45	13
32.	तुष्टि	46	13
33.	अलुब्धता	47	13
34.	क्षमा	48	14
35.	विज्ञान	49-50	14
36.	प्रकृति जानकर दान	51-53	15
37.	दाता कैसा आहार न दे	54-56	15
38.	सत्त्व	57	16
39.	श्रावकके इक्कीस गुण	58-61	16

40.	धर्मानुरागी	62	17
41.	पापभीरू	63	18
42.	धैर्यवान्	64	18
43.	सुशील	65	18
44.	लज्जावान्	66	18
45.	लोकमान्य	67	19
46.	कृतज्ञ	68	19
47.	शुभ सङ्कल्पी	69	19
48.	सत्यवादी गुण	70	20
49.	वात्सल्य-युक्त	71	20
50.	वैरागी	72	20
51.	धर्म प्रभावनाका इच्छुक	73	20
52.	संवेगी	74	21
53.	स्वपर कल्याणार्थी	75	21
54.	संयमोन्मुख	76	21
55.	त्यागी	77	22
56.	विवेकी	78	22
57.	उदार	79	22
58.	सहिष्णु	80	22
59.	तत्त्वचिन्तक	81	23
60.	दयालु	82	23
61.	आभूषण दाताकी शोभा	83-84	23

62.	दाताके पाँच आभूषण	85	24
63.	आदरपूर्वक दान	86	24
64.	आनन्दपूर्वक दान	87	24
65.	मधुर वचनों सहित दान	88	25
66.	निर्मल भावपूर्वक दान	89	25
67.	दान देकर अहोभाग्य मानना	90-91	25
68.	दूषण युक्त दान अशुभ	92-93	26
69.	दाताके पञ्च दूषण	94	26
70.	विलम्बसे दान	95	27
71.	अनादरपूर्वक दान	96	27
72.	उदासीनतापूर्वक दान	97	27
73.	कटु शब्दों सहित दान	98	28
74.	दान देकर पश्चाताप करना	99	28
75.	पञ्च दूषण त्याज्य	100	28
76.	प्रशंसनीय दाता	101	28
77.	दानसे उत्तम फल प्राप्ति	102-103	29
78.	सोलह शुद्धि	104	29
79.	चतुर्विध द्रव्य व क्षेत्र शुद्धि	105	30
80.	चतुर्विधकालशुद्धि व भावशुद्धि	106-107	30
81.	मुनि आहार ग्रहण क्यों वकेसे	108	30
82.	दानमें निषिद्ध वस्त्र	109	31
83.	जितनी शुद्धि उतना पुण्य	110	31

84.	सूतक-पातकमें दान निषिद्ध	111	31
85.	शेषान्न ग्रहणकी महिमा	112-113	32
86.	मोक्षमार्गीकी प्रवृत्ति दानमें	114	32
87.	दानानुमोदनासे भी सद्‌गति	115-116	32
88.	किसका घर नरक बिलके समान	117	33
89.	किसका गृह श्मशान	118	33
90.	सभी दानोंमें आहारदान मुख्य	119-122	33
91.	आहारदानमें सभी दान	123	34
92.	आहार ही औषधि	124	34
93.	आहारदानमें ज्ञानदान	125	35
94.	आहारदानमें अभयदान	126-127	35
95.	कुपात्रदान मोक्षका हेतु नहीं	128-129	36
96.	सुपात्रदान विपुल फल दाता	130-133	36
97.	आहारदानसे महापुण्यफल प्राप्ति	134	37
98.	सुपात्रदान बिना मोक्ष नहीं	135	37
99.	पात्रदानकी महिमा	136	38
100.	सुपात्रदानका फल	137-143	38
101.	आहारदान समकोई दान नहीं	144	39
102.	पात्रदानमें प्रसिद्ध	145-146	40
103.	औषधिदान	147-148	40
104.	अशुद्धौषधि दान परिहार	149	41
105.	अनुभूत व अनुकूल औषधिदान	150	41

106.	अपथ्य भोजन परिहार	151	41
107.	औषधिदानकी महिमा	152-154	42
108.	स्वन्यायार्जित धनसे दान	155-158	42
109.	औषधिदानसे पाप क्षय	159	43
110.	औषधिदानके विरोधसे पुण्य क्षीण	160	44
111.	साधुओंके स्वास्थ्यकी रक्षा	161-162	44
112.	औषधिदानमें प्रसिद्ध	163	45
113.	सम्यग्ज्ञानसे अज्ञान नाश	164	45
114.	सम्यग्ज्ञानका हेतु	165	45
115.	संवेगादिका निमित्त-सम्यग्ज्ञान	166	45
116.	ज्ञानदान माहात्म्य	167-169	46
117.	शास्त्रदानीका पुण्य अकथ्य	170-171	47
118.	ज्ञानावरण क्षयोपशमका हेतु	172	47
119.	शास्त्र प्रकाशन महिमा	173	47
120.	ज्ञानदान चित्त सन्तुष्टिका हेतु	174	48
121.	चार अनुयोग, चार ज्ञानके हेतु	175	48
122.	प्रथमानुयोगका प्राधान्य	176	48
123.	चार अनुयोगका स्वाध्याय	177	48
124.	स्वाध्यायका फल	178-181	49
125.	ज्ञानदान बिना नरजन्म विफल	182	50
126.	शास्त्रोंसे जिनशासनकी स्थिति	183	50

127.	ज्ञान-ज्ञानीकी विनय आवश्यक	184	50
128.	ज्ञानादिका अविनय दुर्गतिका हेतु	185	51
129.	देव, शास्त्र, गुरु पर क्रोधीका सब नष्ट	186-187	51
130.	शास्त्र नष्ट करनेसे पुण्य नष्ट	188	51
131.	स्वाध्यायादिमें विघ्नसे दुर्गति	189	52
132.	शास्त्रनाशसे विकलाङ्गादि	190	52
133.	जिनधर्मसे उदासीनको मुक्ति नहीं	191-192	52
134.	ज्ञानदानमें प्रसिद्ध	193	53
135.	अभयदान महाधर्म	194	53
136.	सभी दानोंका प्राण-अभयदान	195-196	53
137.	सभी पर दया	197	54
138.	स्वात्माके प्रति दयालु	198	54
139.	परस्पर उपकार-जिनधर्म	199	54
140.	दया बिना धर्म प्रवृत्ति अशक्य	200	55
141.	अहिंसादि रूप धर्म सुखकर	201	55
142.	धर्मात्मा	202	55
143.	धरती पर भगवान	203	56
144.	अभयदान फल	204-206	56
145.	अनुकम्पादानको मुक्ति प्राप्ति	207	57
146.	कुवचन भी हिंसाकारक	208	57
147.	संयमोपकरण दान	209	57

148.	शौचोपकरण दान	210	58
149.	उपकरण दान	211	58
150.	वस्त्रदान फल	212	58
151.	अभयदानमें प्रसिद्ध	213	59
152.	चतुर्दान फल	214	59
153.	दान निर्देश	215	59
154.	जिनशासनकी स्थिति हेतु मन्दिरादिकी स्थापना	216	59
155.	चतुर्विध दत्ती	217-220	60
156.	दानके अतिचार	221	61
157.	निर्माल्य भक्षीकोन	222-223	61
158.	अशुद्ध दान पापका कारण	224	62
159.	दान नहीं करने वालेको सुख नहीं	225	62
160.	अन्तिम मङ्गलाचरण	226	62
161.	ग्रन्थकारकी लघुता	227	63
162.	प्रशस्ति	228	63

दाण-सारो

(दान सार)

मङ्गलाचरण

सद्दाणं अक्खयं च, दायिदुं सव्वण्हुं समत्थं हं।
खइयदाण-संपण्णं, तिजोगेहि णमामि भत्तीइ॥1॥

अक्षय सद्दान देने में समर्थ, क्षायिक दान से सम्पन्न सर्वज्ञदेव को मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) तीनों योगों से भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

णिच्चा सिद्धा सव्वा, कम्महीणा अणंतसहावजुदा।
सम्मत्ताइ-गुणेहिं, लोयसिहरवासिणो णमामि॥2॥

नित्य, कर्म से हीन, अनन्त स्वभाव से युक्त, सम्यक्त्वादि गुणों से सहित, लोकशिखर पर निवास करने वाले सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

सूरी पाढगा मुणी, जिणधम्मं सव्वण्हु-वयणं थुवमि।
किट्टिमाकिट्टिमाइं, जिणचेइय-चेइयालयाणि॥3॥

आचार्य, उपाध्याय, मुनिगण, जिनधर्म, सर्वज्ञ वचन एवं कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-चैत्यालयों की मैं स्तुति करता हूँ।

धर्म लक्षण व भेद

धम्मो दुविहो भणिदो, जिणसासणम्मि अप्पहिदमग्गो दु।
पढमो दु समणधम्मो, जहाजाद-णिग्गंथाणं च॥4॥

आत्महित का मार्ग धर्म है। जिनशासन में वह धर्म दो प्रकार का कहा गया है। यथाजात निर्ग्रन्थों का श्रमणधर्म प्रथम है।

जाणेज्जा जिणसमये, अज्जा महव्वदी उवयारेणं।
विदियो सावयधम्मो, गिहत्थाणं सावगाणं च॥5॥

जिनशासन में आर्यिकाएँ उपचार से महाव्रती हैं। गृहस्थ श्रावकों का द्वितीय श्रावकधर्म है।

श्रावक धर्म

पालंते एयारस-पडिमा उवासगा बारस-वदाणि।
सावयधम्मे दाणं, पूया चिय उहयचेयणा व॥6॥

उपासक बारह व्रत व ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं। श्रावकधर्म में दान व पूजा उभय (ज्ञान व दर्शन) चेतना के समान हैं।

दाणं पूया सीलो, गुरुभत्ती जवोववासो वि तहा।
कइवय-आइरियेहिं, उप्पालिदो सावयधम्मो॥7॥

दान, पूजा, शील, गुरुभक्ति, जप तथा उपवास भी श्रावक का धर्म है। ऐसा कई आचार्यों ने कहा है।

दान की प्रधानता

सव्वाइरिया भणंति, दाणं मुक्खं पणासिदुं पावं।
गिहत्थाणं जलं जह, धोवेदुं रत्तकलंकं दु॥8॥

जिस प्रकार रक्त के दाग को धोने के लिए जल है उसी प्रकार सभी पापों के नाश के लिए दान मुख्य है। ऐसा सभी आचार्य कहते हैं।

जे के अवि उवासगा, णियमेण देंति ते चदुविहदाणं।
तिविहपत्ता णवहा-भत्तीए चिय जहाजोग्गं॥9॥

जो कोई भी उपासक (श्रावक) हैं वे नियम से तीन प्रकार के पात्रों को यथायोग्य नवधाभक्तिपूर्वक चार प्रकार का दान देते हैं।

दान लक्षण

धम्मज्झाण-णाण-तव-संजम-वदाणं च संविड्ढीए।
सगवर-अणुग्गहत्थं, सग-सुदव्व-तिप्पणं दाणं॥10॥

धर्मध्यान, ज्ञान, तप, संयम व व्रतों की वृद्धि के लिए, स्वपर अनुग्रह के लिए अपने श्रेष्ठ द्रव्य को देना दान है।

दान के भेद

आहारोसही णाण-मभयदाणं अहवा वसदि-दाणं।
समेदुं चउकसायं, चउगदिं खयेदुं सक्कं च॥11॥

आहारदान, औषधिदान, ज्ञानदान, अभयदान अथवा वसतिका दान, ये चार प्रकार का दान चार गतियों का क्षय करने व चार कषायों का शमन करने में समर्थ है।

दान का महत्व

सगणायज्जिदं धणं, देज्ज भत्तीए वड्ढिदुं धम्मं।
मोहणिवत्तीइ सिवं, पाविदुं धम्मी संजमी य॥12॥

धर्मी व संयमीजनों को धर्म की वृद्धि के लिए, मोह से निवृत्ति के लिए, मोक्ष प्राप्त करने के लिए भक्तिपूर्वक अपने न्यायार्जित धन का दान करना चाहिए।

सवर-अणुग्गहो धम्मविड्ढी पावक्खयो सुदाणेणं।
उहयधम्मरक्खगो दु, दायगो सव्वदा मण्णेज्ज॥13॥

सम्यक् दान से स्वपर का अनुग्रह, धर्म की वृद्धि व पाप का क्षय होता है। दाता सदा उभय (श्रमण व श्रावक) धर्म का रक्षक मानना चाहिए।

दान बिना गृहस्थ की शोभा नहीं

कत्थूरिं विणा मिगो, भद्दं उसहो परक्कमं सीहो।
णायेण विणा राओ, संजमेणं विणा जोगी य॥14॥

सीलेण विणा इत्थी, गंधं पुप्फं सूरत्तं जोहो।
दयाइ धम्मो जह तह, गिहत्थो विणा सुदाणेणं॥15॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार कस्तूरी के बिना हरिण, भद्रता के बिना वृषभ, पराक्रम के बिना सिंह, न्याय के बिना राजा, संयम के बिना योगी, शील के बिना स्त्री, गन्ध के बिना पुष्प, शूरता के बिना योद्धा और दया के बिना धर्म सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार सम्यक् दान के बिना गृहस्थ सुशोभित नहीं होता।

दान बिना श्रावक नहीं

वीदरायत्तं विणा, जह णेव को वि हवेदि परमप्पा।
ण को वि वरोवासगो, तह विणा सुपत्तदाणेणं॥16॥

जिस प्रकार वीतरागता के बिना कोई भी परमात्मा नहीं होता उसी प्रकार सुपात्रदान के बिना कोई भी श्रेष्ठ उपासक नहीं होता।

उत्तम पात्र

पणमहव्वद-समिदीण, अक्खणिरोहस्स छआवसियाणं।
उत्तमपत्ता मुणिणो, सत्तविसेसगुणपालगा य॥17॥

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंच इन्द्रियनिरोध, छह आवश्यक व सात विशेषगुण का पालन करने वाले मुनिराज उत्तम पात्र हैं।

अडवीसमूलगुणेहि, बारसतवेहिं परिसहजयेहिं।
उत्तरगुणसंजुत्ता, सुचित्तधारगा वरपत्ता॥18॥

अट्ठाईस मूलगुण और बारह तप व बाईस परीषहजय इन चौंतीस उत्तरगुणों से युक्त उत्तम चित्त के धारक मुनिराज उत्तम पात्र हैं।

विसयकसाय-विरहिदा, आरंभहीणा पाववज्जिदा य।
णाणज्झाणतवजुदा, उत्तमपत्ता मुणेदव्वा॥19॥

विषय-कषाय से रहित, आरम्भ से हीन, पाप से रहित, ज्ञान-ध्यान व तप से युक्त साधु उत्तमपात्र जानने चाहिए।

मध्यम पात्र

अज्जा उवयारेणं, महव्वदी वि जाण मज्झिमपत्ता।
भव-सरीर-भोयादो, विरत्ता हिदेसय-पसंता॥20॥

अणुव्वद-गुणव्वदेहि, चत्तारिसिक्खावदसंजुत्ता य।
एयारसपडिमाजुद-सावया चिय मज्झिम-पत्ता॥21॥ (जुम्मं)

संसार, शरीर, भोगों से विरक्त, हितैषी, प्रशान्त आर्यिका उपचार से महाव्रती हैं। उन्हें मध्यम पात्र जानना चाहिए। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत से संयुक्त एवं ग्यारह प्रतिमाओं से युक्त श्रावक भी मध्यम पात्र हैं।

जघन्य पात्र

उहयवदरहिदा तहा, परमभत्ता जिणसुद-णिग्गंथाण।
अविरद-सम्मादिट्ठी, जहण्णपत्ता जिणसमयम्मि॥22॥

दोनों व्रतों (महाव्रत व अणुव्रत) से रहित, जिनेन्द्र प्रभु, श्रुत व निर्ग्रन्थ गुरुओं के परमभक्त अविरत सम्यग्दृष्टि जिनशासन में जघन्य पात्र माने गए हैं।

सम्यग्दृष्टि अव्रती भी पुण्यरत

अव्वदी उवासगो वि, सम्मत्त-संजुदो सिवाहिलासी।
जिणपूयग-गुरुभत्तो, णिरालसो पुण्णकज्जरदो॥23॥

सम्यक्त्व से संयुक्त अव्रती उपासक भी शिवाभिलाषी, जिनपूजक, गुरुभक्त, निरालसी एवं पुण्यकार्य में रत हैं।

अपच्चक्खाणुदयादु, सुहकिलिट्ठो ण कंखदि अघकज्जं।
पावं णो उज्झंतो, सुभावणाइ अज्जदि पुण्णं॥24॥

अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से शुभ संक्लिष्ट अर्थात् व्रत ग्रहण करने के लिए संक्लेश भाव से युक्त जीव पापकार्य को नहीं चाहता। किन्तु पाप को नहीं छोड़ता हुआ शुभ भावना से पुण्य का अर्जन करता है।

अविरत सम्यग्दृष्टि भी अभक्ष्यादि का त्यागी

उज्झदि अभक्ख-भक्खण-मण्णाय-मणीदि-मच्चायारं च।
अविरदो हवंतो अवि, भवभीरू दु सम्मादिट्ठी॥25॥

संसार से भीरू सम्यग्दृष्टि जीव अविरत (व्रत रहित) होते हुए भी अभक्ष्य भक्षण, अन्याय, अनीति व अत्याचार का त्याग करता है।

दानी की पात्रता

सत्तवसणविवज्जिदा, अट्ठमूलगुणमंडिदुवासगा य।
भवकारणभीरू वच्छलो य वेरग्गसंजुत्तो॥26॥

करेज्ज णवहाभत्तिं, तिविहपत्तं पडि सय जहाजोग्गं।
भत्तीइ विणा दाणं, णेव धम्मो अरिहंतमदे॥27॥ (जुम्मं)

सात व्यसनों से रहित, अष्ट मूलगुणों से मण्डित, संसार कारणों से भीरू, वात्सल्य युक्त और वैराग्य से संयुक्त उपासकों को तीन प्रकार के पात्रों के प्रति सदा यथायोग्य नवधाभक्ति करनी चाहिए। अरिहन्त मत में भक्ति के बिना दान धर्म नहीं है।

नवधाभक्ति आवश्यक

कुव्वदि णवहाभत्तिं, सावयो दायंतो पत्तदाणं।
तेण विणा णो मण्णदि, दाणं धम्मो जइण-मदम्मि॥28॥

श्रावक पात्रदान देते हुए नवधाभक्ति करता है, उसके बिना दान जैनदर्शन में धर्म नहीं माना जाता।

नवधा भक्ति

पडिग्गह-मुच्चट्ठाणं, पय-पक्खालण-मच्चणं पणामो।
मण-वयण-काय-सुद्धी, एसणासुद्धी णवभत्ती॥29॥

पड़गाहन, उच्चस्थान, पाद-प्रक्षालन, अर्चना, प्रणाम, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि व आहार-जल शुद्ध, ये नव भक्ति हैं।

पड़गाहन

समागद-सुपत्ताणं, आयारणं बद्धकरंजलीए।
विणयेणं आहारं, दायिदुं पडिग्गहं णेयं॥30॥

समागत सुपात्रों को आहार देने के लिए विनय-पूर्वक हाथ जोड़कर बुलाना पड़गाहन जानना चाहिए।

उच्चस्थान

पुआवित्ता विणयेण, णियगिहं णिवज्जिदु-मासण-दाणं।
आयर-सम्माणेणं, सुपत्तस्स उच्चट्ठाणं दु॥31॥

सुपात्र को विनयपूर्वक अपने घर पर बुलाकर, बैठने के लिए आदर-सम्मान से आसन देना उच्चस्थान है।

पादप्रक्षालन

उत्तमाइ-पत्ताणं, चरण-धुवणं विणयेण भत्तीए।
तं णियसिरधरणं पय-पक्खालण-महं खालेदुं॥32॥

पाप के प्रक्षालन के लिए उत्तमादि पात्रों के विनयपूर्वक भक्ति से चरण धोना पुनः उस चरणोदक को अपने सिर पर धारण करना पादप्रक्षालन है।

अर्चना

वसुकम्मं णासेदुं सिद्धत्थफलाइ-उत्तमदव्वेहि।
तियजोगविसुद्धीए, पूयणं हु अच्चणा णेया॥33॥

अष्ट कर्मों के नाश के लिए तीनों योगों की विशुद्धिपूर्वक सिद्धार्थ, फलादि उत्तम द्रव्यों से पूजन करना अर्चना जाननी चाहिए।

प्रणाम

बद्धहत्थंजलीए, गवासणेण वा तिजोगसुद्धीइ।
अण्णसुहासणेणं दु, णमणं भत्तीए पणामो॥34॥

तीनों योगों की शुद्धिपूर्वक गवासन से या अन्य शुभासन से हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक नमन करना प्रणाम है।

मनशुद्धि

सव्वं असुह-विअप्पं, उज्झिय धरिय परमविसुद्धभावं।
सुहधम्मज्झाणेणं, सुपत्तदाणं दु मणसुद्धी॥35॥

सर्व अशुभ विकल्पों का त्यागकर परम विशुद्ध भाव धारण करके शुभ धर्म-ध्यानपूर्वक सुपात्रों के लिए दान देना मनशुद्धि है।

वचनशुद्धि

उक्किट्ठिट्ठसिट्ठाण, हिद-मिद-पिय-सुहकर-वयण-वदणं दु।
दायंतो पत्तदाण-माणंदेणं वयणसुद्धी॥36॥

पात्रों को दान देते हुए आनन्दपूर्वक उत्कृष्ट, इष्ट, शिष्ट, हित, मित, प्रिय, सुखकर वचनों का बोलना वचनशुद्धि है।

कायशुद्धि

जो सेदाइ-मलादो, असज्झ-संकमणाइ-रोय-रहिदो।
सावज्ज-वसण-रहिदो, ण्हादो य कायसुद्धी तस्स॥37॥

जो पसीना आदि मल से रहित है, असाध्य रोग वा सङ्क्रमणादि रोगों से रहित है, सावद्य वस्त्रों से भी रहित है और नहाया हुआ है, उसके काय शुद्धि जाननी चाहिए।

सुंदरिमाइ पसाहण-संजुत्तो मलिण-भूसण-णक्खेहि।
असुद्ध-वत्थेहि तहा, कायसुद्धिविहीणो णेयो॥॥38॥

जो सौन्दर्य प्रसाधन, मलिन आभूषण व मलिन नखों से युक्त है, अशुद्ध वस्त्रों से संयुक्त है, वह कायशुद्धि से विहीन जानना चाहिए।

कुलशुद्धि आवश्यक

जस्स कुल-जादि-सुद्धो, विसुद्धो अवि लोयववहारे जो।
विहवाविवाहादीदु विवज्जिदो कुलसुद्धी तस्स॥39॥

जिसका कुल व जाति शुद्ध है, जो लोकव्यवहार में भी विशुद्ध है, विधवा विवाह आदि से विवर्जित है, उसकी कुलशुद्धि जाननी चाहिए।

पात्रदान के अयोग्य

णीयकुलीण-वभिचारि-कयायारि-इत्थीए उप्पण्णो।
विवाहाविदो ताए, णर-असुद्धो तहेव इत्थी॥40॥

नीच कुलीन, व्यभिचारी, कदाचारी स्त्री से उत्पन्न या उस स्त्री से विवाहित नर अशुद्ध है और इसी प्रकार स्त्री के विषय में भी जानना चाहिए।

आहार जल शुद्धि

सुद्धो मज्जादिद-फासुगो णायज्जिद-सत्तिगाहारो।
लोयायारणुऊलो, धम्मज्झाणवड्ढग-सुद्धो।।41।।

जो शुद्ध है, मर्यादित व प्रासुक है, न्यायार्जित धन से प्राप्त है, लोकाचार के अनुकूल है, धर्मध्यान की वृद्धि करने वाला है ऐसा सात्विक आहार शुद्ध है।

आवसिया जलसुद्धी, कूव-सरिदा-णिज्झरवरिसादीण।
जल-मारोग्ग-वड्ढगं, ण लंघेज्ज लोयववहारं।।42।।

आहार में जलशुद्धि भी आवश्यक है। जल कूप, सरिता, झरना, वर्षा आदि का और आरोग्यवर्द्धक होना चाहिए। लोकव्यवहार का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए।

दाता के सात गुण

सद्धा भत्ती तुट्ठी, अलोहो खमा विण्णाणं सत्तं।
सत्तगुणा दायगस्स, इमेहि विणा णिप्फल-दाणं।।43।।

दाता के सात गुण होते हैं-श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, अलुब्धता, क्षमा, विज्ञान और सत्त्व। इनके बिना दान निष्फल है।

श्रद्धा गुण

जिणसुदणिग्गंथेसुं, जिणधम्मे वा परमरुई सद्धा।
णिद्दोसं अंगजुदं, सम्मत्तं भव-हरण-हेदू।।44।।

जिनदेव, जिनश्रुत, निर्ग्रन्थ मुनिराज वा जिनधर्म में परमरुचि श्रद्धा है। वही आठ अङ्ग युक्त निर्दोष सम्यक्त्व है जो संसार के हरण का हेतु है।

भक्ति

अरिहाइ-पंचगुरूण, गुणेसुं तिव्व-सेट्ठ-अणुराओ।
विसेसेण णादव्वा, भत्ती सुप्पसिद्धा लोए।।45।।

अरिहन्तादि पञ्च गुरुओं के गुणों में तीव्र अनुराग विशेष रूप से लोक में प्रसिद्ध भक्ति जाननी चाहिए।

तुष्टि

केणं पि पत्तलाहे, संतोस-धारणं सुगुणो तुट्ठी।
इस्सं परिहविदूणं, सदुवासगस्स मुणेदव्वो।।46।।

यदि किसी ने भी पात्र लाभ प्राप्त किया हो तो ईर्ष्या को छोड़कर उसमें सन्तोष धारण करना सद् उपासक का 'तुष्टि' नामक गुण जानना चाहिए।

अलुब्धता

सुपत्ताण दाणं णो, देज्ज कयावि किवणत्त-भावेणं।
अलुद्धत्तं णंदेण, दाणं च उदारवित्तीए।।47।।

कृपणता के भाव से कभी भी सुपात्रों को दान नहीं देना चाहिए। आनन्दपूर्वक उदारवृत्ति से दान देना 'अलुब्धता' गुण है।

क्षमा

कोहुप्पत्ति-णिमित्ते, उप्पण्णे सीयलभाव-धरणं पि।
हिमं व खमा सुहगुणो, पुण्ण-कारणं पि संवरस्स॥48॥

क्रोध की उत्पत्ति के निमित्त मिलने पर भी हिम के समान शीतल भाव धारण करना 'क्षमा' नामक शुभ गुण है। यह क्षमा संवर व पुण्य का भी कारण है।

विज्ञान

आहारदाणं एग-सुकला विज्जा य परमविण्णाणं।
विण्णाणगुण-मसक्को, गहिदुं दीहभवी अभव्वो॥49॥

आहारदान एक श्रेष्ठ कला, विद्या व परमविज्ञान है। दीर्घ संसारी अभव्यजीव इस विज्ञान गुण को ग्रहण करने में अशक्य हैं।

णेव साहु-आहारे, विग्घं जाए आहारविहीए।
होज्ज तहेव दाएज्ज, सुदाणधम्मरदसावगा हु॥50॥

जिस आहारविधि से साधु के आहार में विघ्न न होवे उसी प्रकार सम्यक् दानधर्म में रत श्रावकों को पात्रदान देना चाहिए।

प्रकृति जानकर दान

बाल-बुड्ड-गिलाणाण, सइक्ख-मणुण्ण-तवसि-झाणीणं च।
जाणित्ता पइडिं सय, दाएज्ज अणुऊलाहारं॥51॥

बाल मुनि, वृद्ध मुनि, ग्लान, शैक्ष्य, मनोज्ञ, तपस्वी व ध्यानी साधुओं की प्रकृति को जानकर सदैव अनुकूल आहार देना चाहिए।

कफ-वाद-पित्त-पइडिं, परिक्खित्तु दाएज्ज सुपत्ताणं।
रोयाइमवत्थं अवि, आहारं विवित्तो सया हि॥52॥

सुपात्रों की कफ, वात, पित्त प्रकृति, रोगादि व उनकी अवस्था की परीक्षा कर ही विवेकीजन को सदैव आहार देना चाहिए।

फासुगं मज्जादिदं, अणिंदणीयं च लोयववहारे।
उइद-अणुवादे देज्ज, आहारं दु तवविड्ढीए॥53॥

श्रावकों को सुपात्रों को तपवृद्धि के लिए प्रासुक, मर्यादित व लोकव्यवहार में अनिन्दनीय आहार उचित अनुपात में देना चाहिए।

दाता कैसा आहार न दे

विवण्णं दुग्गंधिदं, कुरसं णिंदं लोयववहारम्मि।
अद्धपक्क-मदिपक्कं, दड्ढाहारं णो दाएज्ज॥54॥

जिसका वर्ण विकृत हो गया हो, दुर्गन्धित, खराब रस वाला, लोकव्यवहार में निन्दनीय, आधा पका, ज्यादा पका एवं जला आहार पात्रों को नहीं देना चाहिए।

आगम-पइडि-लोयववहार-विरुद्धं बहुजीवघादगं।
रोयकारगं च णेव, पुण पुण उण्हकिद-माहारं॥55॥

साधुओं को आगम विरुद्ध, प्रकृति विरुद्ध, लोकव्यवहार के विरुद्ध, बहुजीवघातक, रोगकारक और पुनः पुनः गर्म किया आहार नहीं देना चाहिए। (बार-बार गर्म किया आहार रोग का कारण होता है।)

सज्झाय-परिहारगं, संजम-विघादगं तव-भंजगं च।
पमाद-जणिदं इंदिय-उत्तेजगं तामसिगं णो॥56॥

स्वाध्याय का परिहारक, संयम का विघातक, तप को भङ्ग करने वाला, प्रमादजनित, इंद्रिय उत्तेजक व तामसिक आहार नहीं देना चाहिए।

सत्त्व

विणयदयाचागजुत्त-उजुपरिणामा उत्तम-दायगस्स।
सत्तं सय णादव्वं, महाणंदकारणं णियमा॥57॥

विनय, दया व त्याग से युक्त उत्तम दाता के ऋजु परिणामों को सदा 'सत्व' जानना चाहिए। वह नियम से महा आनन्द का कारण है।

श्रावक के इक्कीस गुण

सामण्णगुणा णेया, इगवीसा दायगस्स सत्थेहिं।
एदाण गुण-धारगा, उवासगो दु पसंसणीयो॥58॥

शास्त्रों से दाता के इक्कीस सामान्य गुण जानने चाहिए। इन गुणों के धारक श्रेष्ठ उपासक प्रशंसनीय हैं।

धम्माणुरायी पावभीरू धीरो सुसीलो लज्जू य।
लोयमण्णो किदण्हू, सुहसंकप्पी सच्चवायी॥59॥

वच्छलो विरागी धम्मपहावणाइच्छुगो संवेगी।
सगवर-कल्लाणत्थी, संजमुम्मुहो सय चागी॥60॥

विवित्तो तह उदारो, सहिण्हू तच्चचिंतगो दयालू।
एदे इगवीसगुणा, दायगस्स जिणवरुद्दिट्ठा॥61॥ (तिगं)

धर्मानुरागी, पापभीरू, धैर्यवान्, सुशील, लज्जावान् लोकमान्य, कृतज्ञ, शुभ सङ्कल्पी, सत्यवादी, वात्सल्ययुक्त, वैरागी, धर्मप्रभावना का इच्छुक, संवेगी, स्वपर कल्याणार्थी, संयमोन्मुख, त्यागी, विवेकी, उदार, सहिष्णु, तत्वचिन्तक व दयालु, दाता के ये इक्कीस गुण श्रीजिनेन्द्र के द्वारा कहे गए हैं।

धर्मानुरागी

जिणदेवपणीदे वत्थु-सहावे अहिंसाइ खमादिम्मि।
धम्मे वा धारगेसु, तस्स रायी धम्मणुरायी॥62॥

जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत धर्म, वस्तु के स्वभाव रूप धर्म, अहिंसा व क्षमादि धर्म अथवा उसके धारकों में रागी धर्मानुरागी है।

पापभीरू

करणादो सुणणादो, भयभीदो जिणसुदमुणिणिंदाए।
संसार-कारणादो हिंसादीदु पावभीरू य॥63॥

जो जिनदेव, जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ मुनिराजों की निन्दा करने व सुनने से, संसार के कारणों से और हिंसा आदि से भयभीत है वह पापभीरू है।

धैर्यवान्

धीरं कज्जसाहगं, आउलदा कज्जणासगा णिच्चं।
संसणीयो आयंस-सावयो धीरो गुणपुंजो॥64॥

धैर्य नित्य कार्य का साधक है और आकुलता कार्य की नाशक है। गुणों का पुञ्ज, धैर्यवान्, आदर्श श्रावक सदैव प्रशंसनीय है।

सुशील

सीलं सुधम्म-मूलं, विणा सव्वगुणा णेया सुण्णं व।
तं सग-इत्थीए वा, पदिम्मि तुट्ठा सीलवंता॥65॥

शील धर्म का मूल है। उसके बिना सभी गुण शून्य के समान जानने चाहिए अत: अपनी स्त्री में वा पति में सन्तुष्ट रहने वाले शीलवान् जानने चाहिए।

लज्जावान्

परगुणपसंसगो सग-सक्किदि-सब्भदा-मज्जादाणं च।
रक्खगो य लज्जालू, संकोडी सगगुणसुणणम्मि॥66॥

दूसरों के गुणों की प्रशंसा करने वाला, अपनी संस्कृति, सभ्यता व मर्यादा का रक्षक, अपने गुण सुनने में सङ्कोची लज्जावान् है।

लोकमान्य

गुणवंतो अघभीरू, मज्जादारक्खगो महुरभासी।
सुहकज्जरदो विणदो, पुण्णभोत्ता लोयमण्णो दु॥67॥

जो गुणवान्, पापभीरू मर्यादा का रक्षक, मधुरभाषी, शुभ कार्य में रत, विनयी और पुण्यभोक्ता है, वह लोकमान्य है।

कृतज्ञ

परकिदमुवयारं णो, विम्हरंतो तप्परो उवयारं।
कुणिदुं पराण जो सो, किदण्हू सय पसंसणीयो॥68॥

जो परकृत उपकार को न भूलते हुए दूसरों का उपकार करने में तत्पर हैं वह कृतज्ञजन सदा प्रशंसनीय हैं।

शुभ सङ्कल्पी

णंदेण दढ-पालगो, जम-णियमाणं सुहसंकप्पाणं।
पदिण्णा-अभंजगो य, सुहसंकप्पी मुणेदव्वो॥69॥

आनन्दपूर्वक यम, नियम व शुभ सङ्कल्पों का दृढ़ पालन करने वाला एवं प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करने वाला शुभ सङ्कल्पी जानना चाहिए।

सत्यवादी गुण

धम्म-पाणोव्व सच्चं, पदिट्ठा-सुह-विस्सास-कारणं च।
सगवर-सीयलत्तस्स, सच्चगुण-जुदो सच्चवायी॥70॥

सत्य धर्म के प्राण के समान है। वह प्रतिष्ठा, सुख, विश्वास तथा स्वपर शीतलता का कारण है। उस सत्यगुण से युक्त सत्यवादी है।

वात्सल्य-युक्त

णिस्सत्थ-वच्छल्लं व, सगवच्छं पडि सय धेणुस्स।
साधम्मीण गुणेसुं, सवच्छल्ल भावो सुदादू॥71॥

गाय का अपने बछड़े के प्रति जैसा नि:स्वार्थ वात्सल्य होता है वैसे ही साधर्मियों के गुणों में वात्सल्यभाव से युक्त सम्यक् दाता जानना चाहिए।

वैरागी

भव-तणु-भोयाण सम्म-सरूवं जाणित्तु विरत्तो तादु।
धम्माणुरत्तो सया, परमविरागी णियडभव्वो॥72॥

जो धर्म में अनुरक्त निकट भव्यजीव संसार, शरीर व भोगों के सम्यक् स्वरूप को जानकर उनसे सदा विरक्त रहता है, वह परम वैरागी है।

धर्म प्रभावना का इच्छुक

जो सराग-सद्दिट्ठी, कंखी जिणसासणपहावणाए।
णायज्जिद-दव्वेहिं, तिजोगेहि वर-दायगो सो॥73॥

जो सराग सम्यग्दृष्टि तीनों योगों से एवं अपने न्यायार्जित द्रव्य से जिनशासन की प्रभावना का आकांक्षी है वह श्रेष्ठ दाता है।

संवेगी

धम्मे धम्मफलेसुं, साधम्मीसु वच्छल्लं भावजुदो।
सहरिसो सुहकज्जेसु, संवेगी सम्मादिट्ठी य॥74॥

धर्म, धर्म के फल व पुण्यकार्यों में हर्ष तथा साधर्मियों में वात्सल्य भाव से युक्त सम्यग्दृष्टि जीव संवेगी हैं।

स्वपर कल्याणार्थी

सवर-हिद-भावणा-जुद-सद्दिट्ठी उत्तमदायगो सय हि।
सवर-हिद-भावहीणो, ण धम्मी ण दायगो कया वि॥75॥

स्वपर हित की भावना से युक्त सम्यग्दृष्टि जीव सदा ही उत्तम दाता है। जो स्वपर हित की भावना से हीन है वह न तो कदापि धर्मी है और न ही दाता।

संयमोन्मुख

भव-तण-भोय-सरूवं, चिंतिदूणं कंखेदि संजमं च।
जाण उत्तम-दायगो, भवदुहं उज्झिदुं समत्थो॥76॥

जो संसार, शरीर, भोगों के स्वरूप का चिन्तन करके सदा संयम की आकाङ्क्षा करता है वह उत्तम दाता संसार के दु:खों को जलाने में समर्थ है।

त्यागी

अणादीदो दु जीवो, भोयसक्कारणिबद्धो दुहदेहि।
तादो सया विरत्तो, परत्थचागरदो चागी य॥77॥

अनादिकाल से जीव भोगों के दुखद संस्कारों से निबद्ध है। उससे विरक्त व पर पदार्थ त्याग में रत सदा त्यागी है।

विवेकी

जो सावयो विवित्तो, णीर-खीर-विवेगसील-हंसोव्व।
संसणीयो पहाणो, जिणसासण-पहावणाइ सो॥78॥

जो श्रावक नीर-क्षीर-विवेकी हंस के समान विवेकवान् है, वह जिनशासन की प्रभावना में प्रधान व प्रशंसनीय है।

उदार

कडुअ हिअयं चक्कीव, देज्जा दाणं उत्तमपत्ताणं।
अप्प-मुरालत्तेण वि, लहदि बहुफलं वडबीअं व॥79॥

जो चक्रवर्ती के समान हृदय करके उत्तम पात्रों के लिए उदारतापूर्वक अल्पदान भी देता है, वह वटबीज के समान बहुत फल को प्राप्त करता है।

सहिष्णु

कम्मफलं जाणंतो, धरिदुं चित्ते समत्तं बीयं व।
सहिण्हुत्तं च तेणं, जुदो वरदायगो सहिण्हू॥80॥

कर्म के फल को जानते हुए चित्त में समत्वभाव धारण करने के लिए सहिष्णुता गुण बीज के समान है। उस सहिष्णुता गुण से युक्त सहिष्णु श्रेष्ठ दाता है।

तत्वचिन्तक

सगकम्मफलेसुं सग-पुरिसट्ठे सद्दहित्तु संतुट्ठो।
सो सुदायगो संसो, सया सुही तच्च-चिंतगो हि॥81॥

जो अपने कर्म के फलों में और अपने पुरुषार्थ में श्रद्धा करके सन्तुष्ट होता है वह तत्त्व का चिन्तन करने वाला श्रेष्ठ दाता प्रशंसनीय है। तत्त्वचिन्तक सदा ही सुखी होता है।

दयालु

पस्सित्तु दुही जीवा, चित्तं दविद-मच्चंत-करुणाए।
ववहार-सद्दिट्ठी य, दयालू वरदायगो णेयो॥82॥

दुखी जीवों को देखकर अत्यन्त करुणा से चित्त द्रवित हो जाता है। ऐसा दयालु व्यवहार-सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठ दाता जानना चाहिए।

आभूषण दाता की शोभा

सुपत्ताण-माहारं, दायंतो धरेज्ज पणभूसणाणि।
सुक्कसरोव्व ण सोहदि, दायगो विणा भूसणेहिं॥83॥

सुपात्रों को आहार देते हुए पाँच आभूषण धारण किए जाने चाहिए। दाता भूषणों के बिना वैसे ही सुशोभित नहीं होता जैसे नीर के बिना सरोवर।

सुमेहि विणा उववणं, जलेण सरिदा य रयणेहि सिंधू।
रायेण विणा रज्जं, जह तह दायगो भूसणेहि॥84॥

जैसे फूलों के बिना उपवन, जल के बिना नदी, रत्नों के बिना सागर और राजा के बिना राज्य सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार भूषणों के बिना दाता सुशोभित नहीं होता।

दाता के पाँच आभूषण

आयरेण णंदेणं, महुरवयणेहि णिम्मलभावेहिं।
दाणं वा तं दिच्चा, अहोभग्ग-मणणं भूसणाणि॥85॥

आदरपूर्वक दान देना, आनन्द से दान देना, मधुर वचनों से दान देना, निर्मलभावों से दान देना एवं आहार देकर अपना अहोभाग्य मानना ये दाता के पाँच भूषण हैं।

आदरपूर्वक दान

णेहेण उत्तम-मज्झ-जहण्ण-सुपत्ताण सगगिहे देज्ज।
परमायरभावेणं, आहारं पावक्खयेदुं॥86॥

उत्तम, मध्यम व जघन्य पात्रों को अपने घर पर स्नेहपूर्वक परम आदरभाव से पापक्षय के लिए आहार देना चाहिए।

आनन्दपूर्वक दान

सामण्ण-णिग्गंथा वि, मण्णंतो तित्थयरोव्व णंदेण।
विसुद्धीइ देदि लहदि, तस्स समं फलं भावेहिं॥87॥

जो सामान्य निर्ग्रन्थ मुनिराजों को तीर्थङ्कर के समान मानते हुए आनन्दपूर्वक परमविशुद्धि से आहार देता है वह भावों से उसके समान फल को प्राप्त करता है।

मधुर वचनों सहित दान

आवस्सग-हिय-मिय-पिय-वयणं भासेज्जा अल्हादेणं।
आहारं दायंतो, ण अणावसियमेगसद्दं पि॥88॥

आहार देते हुए आह्लादपूर्वक आवश्यक, हित, मित, प्रिय वचन बोलने चाहिए। एक भी अनावश्यक शब्द नहीं बोलना चाहिए।

निर्मलभावपूर्वक दान

सोग-भय-दुक्ख-इस्सा-दोस-कोह-विसयरत्तभावादो।
विवज्जिदो सुभावेहि, देज्ज आहारं सुपत्ताण॥89॥

शोक, भय, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, विषयानुरक्त भाव से रहित दाता को सुपात्रों को शुभ भावों से आहार देना चाहिए।

दान देकर अहोभाग्य मानना

उववासं जिणपूयं, वदपालणं तित्थवंदणं करिय।
मुणदि भग्गवंतो हं, तह दायित्तु पत्तदाणं पि॥90॥

जैसे उपवास, जिनपूजा, व्रतपालन, तीर्थवन्दना करके जीव स्वयं को भाग्यवान् मानता है उसी प्रकार उत्तम दायक पात्रदान देकर भी स्वयं को सौभाग्यशाली मानता है।

सुभत्ति-विणय-समप्पण-सुइत्तेहि जुददायगस्स भावो।
पंचभूसणेहिं खलु, संसार-सोसण-हेदू सय॥91॥

सुभक्ति, विनय, समर्पण, शुचिता और पञ्च भूषणों से युक्त दाता के भाव सदा संसार के शोषण का कारण हैं।

दूषण युक्त दान अशुभ

पंकलित्तसरीरं व, समलवत्थं व सकिण्हमेघ-खं व।
सेवालजुदसलिलं व, भंडसद्दसंजुदवयणं व॥92॥

दूसणजुददायगेण, दिण्णं अवि अणट्ठगं बहुदाणं।
णिंदं असुहकारणं, णेव पुण्णदायगं कया वि॥93॥ (जुम्मं)

कीचड़ युक्त शरीर, मल युक्त वस्त्र, काले बादलों से युक्त आकाश, शैवाल से युक्त जल और भण्ड शब्द युक्त वचन के समान दूषण युक्त दायक के द्वारा दिया गया बहुत दान भी अनर्थक, निन्द्य, अशुभ का कारण होता है और कदापि पुण्यदायक नहीं होता।

दाता के पञ्च दूषण

दाण-मणादरेण कडुसद्देहि उदासिवेण विलंबेण।
पच्छाताव-कुव्वणं, दायित्ता पंचदूसणाणि॥94॥

विलम्ब से दान देना, अनादरपूर्वक दान देना, उदास होकर दान देना, कटुशब्दों को बोलकर दान देना और दान देकर पश्चाताप करना ये दाता के पाँच दूषण हैं।

विलम्ब से दान

विलंब-दाणेण णेव, सावयो लहदि सम्म-फलं कया वि।
अवसरे चुक्कणे जं, वरदाणं अवि अहिसावोव्व॥95॥

विलम्ब से दान देने से श्रावक कदापि सम्यक् फल को प्राप्त नहीं करता क्योंकि अवसर के चूकने पर वरदान भी अभिशाप के समान है।

अनादरपूर्वक दान

आयरो महाणीदी, पहाणो सव्वसिट्ठायारेसुं।
दत्तजल-मायरेण वि, अमियं व इदरेणं विसोव्व॥96॥

सभी शिष्टाचारों में आदर महानीति व प्रधान है। आदरपूर्वक दिया गया जल भी अमृत के समान है और अनादरपूर्वक दिया गया जल विष के समान है।

उदासीनतापूर्वक दान

सोग-भय-दुह-भावेहि, उदासिवेण वा देदि जदि दाणं।
तो ण पावदि सावयो, फलं दु अणुव्वरग-भूमीव॥97॥

यदि कोई श्रावक शोक, भय व दुःख के भावों से उदासीनतापूर्वक दान देता है तो वह उसी प्रकार फल को प्राप्त नहीं करता जिस प्रकार अनुर्वरा भूमि में बीज बोने से जीव फल प्राप्त नहीं करता।

कटु शब्दों सहित दान

भंडाइ-कुवयणेहिं, दुब्भावेहिं च कसायेहिं सह।
दत्त-सेट्ठ-भोयणं पि, विसोव्व पाव-वड्ढगं तहा॥98॥

भण्ड आदि कुवचनों, दुर्भाव व कषायों के साथ प्रदत्त श्रेष्ठ भोजन भी विष के समान तथा पापवर्द्धक है।

दान देकर पश्चाताप करना

कुव्वदि पच्छातावं, दायित्ता दाणं जो को वि णरो।
सो सस्सिगोव्व उज्झदि, सव्व-सस्सं कोहेण खणे॥99॥

जो कोई भी नर दान देकर पश्चाताप करता है वह उस कृषक के समान है जो क्षणभर में पूरी फसल को जला देता है।

पञ्च दूषण त्याज्य

इमाणि पणदूसणाणि, उज्झणीयाणि उत्तम-दायगेण।
विवित्तेण रक्खाए, चत्तं विसमिस्सिदखीरं व॥100॥

उत्तमदाता को इन पाँच दूषणों का त्याग उसी प्रकार कर देना चाहिए जिस प्रकार विवेकवान् अपने प्राणों की रक्षा के लिए विष मिश्रित दूध का त्याग कर देता है।

प्रशंसनीय दाता

सामण्ण-विसेस-सुगुण-जुदो उत्तम-दायगो भूसणेहि।
सव्वदूसणवज्जिदो, णवहाभत्तिरदो पसंसो॥101॥

जो सामान्य व विशेष गुणों से युक्त है, भूषणों से संयुक्त है, सर्व दूषणों से रहित है और नवधाभक्ति सहित है वह उत्तम दाता प्रशंसनीय है।

दान से उत्तम फल प्राप्ति

उत्तमखेत्ते समये, उत्तमविहीइ ववदि वरं बीयं।
तो लहेदि किसीवलो, जह उत्तमफलं ण संकेज्ज॥102॥

तह उत्तम-दायगो वि, उत्तमदव्वखेत्तकालभावेहि।
पावदि फलं अचिंतं, वरविहीइ पत्तदाणेणं॥103॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार यदि कृषक उत्तम क्षेत्र में, सही समय पर, उत्तमविधि से, उत्तम बीज बोता है तो उत्तम फल को प्राप्त करता है, उसी प्रकार उत्तम द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव से उत्तम विधि से पात्रदान देने से उत्तम दाता अचिन्त्य फल को प्राप्त करता है।

सोलह शुद्धि

उत्तम-दायगाणं च, णियमादो सोलस-सुद्धी समये।
चदु-चदु-भेयादो तह, दव्व-खेत्त-याल-भावाणं॥104॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के पुनः चार-चार के भेद से जिनशास्त्रों में उत्तमदाताओं की सोलह शुद्धि नियम से कही गईं हैं।

चतुर्विध द्रव्य व क्षेत्र शुद्धि

अण्णजलग्गी कत्ता, चदुहा दव्वसुद्धी पुण खेत्तस्स।
सुहवाउ-पयास-जुदं दुग्गंधरहिदं णिरवज्जं॥105॥

अन्न, जल, अग्नि और कर्त्ता की शुद्धि, ये चार प्रकार की द्रव्य शुद्धि हैं। पुनः क्षेत्र शुद्धि भी चार प्रकार की हैं, शुभ वायु युक्त क्षेत्र, प्रकाश युक्त क्षेत्र, दुर्गन्धरहित क्षेत्र व निरवद्य क्षेत्र।

चतुर्विध कालशुद्धि व भावशुद्धि

गहण-सोग-असूदिगा-यालविवज्जिदे य वइयालादो।
सुह-णिद्दोस-यालम्मि, देज्ज सुपत्ताण आहारं॥106॥

ग्रहणकाल, शोककाल, अपवित्र (सूतक-पातक, अशुचि) काल व वैकाल से विवर्जित शुभ व निर्दोष काल है। ऐसे समय में सुपात्रों को आहार देना चाहिए।

तिव्वकसायसंजुदा, पंचिंदिय-विसयासत्त-भावा य।
पावाणण्णकुभावा, णिल्लुंछिय देज्ज सुभावेहि॥107॥

तीव्र कषाय से युक्त, पञ्चेन्द्रिय विषयों में आसक्त भाव व पाप तथा अन्य कुभावों का त्यागकर शुभ भावों से आहार देना चाहिए।

मुनि आहार ग्रहण क्यों व कैसे

बत्तीस-अंतरायं, छदालीस-दोसं परिहावित्ता।
गहदि मुणी आहारं, संजम-तव-झाण-विड्ढीए॥108॥

मुनिराज संयम, तप व ध्यान की वृद्धि के लिए बत्तीस अन्तराय व छियालीस दोषों का परिहार कर आहार ग्रहण करते हैं।

दान में निषिद्ध वस्त्र

किण्ह-णीलाइ-वत्थं, णिंदं सावज्जं अप्पहियं वा।
असोहणीयं दड्ढं, जिण्णं धरिय ण देज्ज दाणं॥109॥

काले, नीले आदि निन्द्य, सावद्य, अल्प वा अधिक, अशोभनीय, जले हुए व फटे हुए वस्त्रों को धारण कर आहारदान नहीं देना चाहिए।

जितनी शुद्धि उतना पुण्य

भोयण-सुद्धीए सह, जोग-उवयरण-सुद्धी आवसिया।
जावइय-सुद्धी लहदि, तावइय-फलं च सुपुण्णस्स॥110॥

भोजन की शुद्धि के साथ योग व उपकरण की शुद्धि भी आवश्यक है। गृहस्थ जितनी अधिक शुद्धि करता है उतने अधिक सुपुण्य फल को प्राप्त करता है।

सूतक-पातक में दान निषिद्ध

सुपुण्णकज्जं करेज्ज, पादग-सूदग-अभावम्मि णिच्चं।
पादगे-सूदगे णो, देज्जा पत्तदाणं कया वि॥111॥

सूतक व पातक के अभाव में नित्य श्रेष्ठ पुण्यकार्य करना चाहिए। सूतक-पातक में पात्रदान कभी नहीं देना चाहिए।

शेषान्न ग्रहण की महिमा

सावगगुणसंजुत्तो, सुपत्ताणं च णवहाभत्तीए।
दूसणरहिदो भूसण-सहिदो दायित्तु दाणं जो॥112॥

अवसेसं भोयणं दु, कुव्वेदि भव्वो परमसड्ढाए।
भुंजदि सो भव-सोक्खं, कमसो णिव्वाण-सोक्खं पुण॥113॥
(जुम्मं)

श्रावक के गुणों से सहित, दूषण रहित व भूषण सहित जो भव्यजीव नवधाभक्तिपूर्वक सुपात्रदान देकर परम श्रद्धा से बचे हुए भोजन को ग्रहण करता है वह क्रमशः संसार सुख व पुनः निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

मोक्षमार्गी की प्रवृत्ति दान में

आहारदाणं विणा, णेव पप्पोदि को वि सिद्धखेत्तं।
होज्ज मोक्खमग्गीणं, पवत्ती आहारदाणम्मि॥114॥

आहारदान के बिना कोई भी जीव सिद्धक्षेत्र (सिद्धालय) को प्राप्त नहीं करता। मोक्षमार्गियों की प्रवृत्ति आहारदान में होती ही है।

दानानुमोदना से भी सद्गति

उत्तमा भोयभूमी, मेत्तं पत्तदाणाणुमोदणेण।
लहिदा जह सीह-णउल-वाणर-सूगरेहि भत्तीइ॥115॥

जैसे सिंह, नेवला, बन्दर व शूकर ने भक्तिपूर्वक पात्रदान की अनुमोदना मात्र से उत्तमभोगभूमि प्राप्त की।

पत्तदाणस्स कहिदुं, पुण्णमहिमं असक्को गणहरो वि।
कहं कहिदुं सक्केमि, अप्पबुद्धिसंधारगो हं॥116॥

पात्रदान की पूर्ण महिमा कहने में जब गणधर भी अशक्य हैं, तब मैं अल्पबुद्धि का धारक पात्रदान की महिमा को किस प्रकार कह सकता हूँ।

किसका घर नरक बिल के समान

जस्स गिहे आहारो, णेव होदि साहूणं तस्स गिहो।
वा गुहा व तिरियाणं, तमसंजुद-णेरइय-बिलं व॥117॥

जिसके घर में साधुओं का आहार नहीं होता उसका घर तिर्यञ्चों की गुफा के समान या अन्धकार युक्त नारकी के बिल के समान है।

किसका गृह श्मशान

जस्सिं सदणम्मि णेव, जिणिंदपूया सुपत्ताहारो य।
तत्थ वट्टदि असुद्धी, मण्णदे णिच्चं मसाणं व॥118॥

जिस घर में जिनेन्द्र पूजा व सुपात्रों का आहार नहीं होता वहाँ नित्य अशुद्धि रहती है और वह घर शमशान के समान माना जाता है।

सभी दानों में आहारदान मुख्य

गिरीसुं सुदंसणोव्व, सिद्धखेत्तेसु सम्मेदसिहरोव्व।
सायरेसुं खीरं व, रुक्खेसुं च कप्परुक्खोव्व॥119॥

रयणेसुं च वज्जं व, मंतेसु सिरि-णमोयारमंतोव्व।
देवेसु गदरायोव्व, साहूसु णिग्गंथोव्व सया॥120॥

गुत्तीसु मणगुत्तीव, धम्मेसु दया व वदेसु सीलं व।
वच्छल्लं व सम्मत्त-अंगेसु सचीव सुरंगणासु॥121॥

रसेसु लवणं व सच्च-वयणं व वयणेसुं तह तवेसुं।
वेज्जावच्चं व सव्व-दाणेसु आहारदाणं हु॥122॥ (चउक्कं)

जिस प्रकार पर्वतों में सुदर्शन, सिद्धक्षेत्रों में सम्मेदशिखर, सागरों में क्षीरसागर, वृक्षों में कल्पवृक्ष, रत्नों में हीरा, मन्त्रों में णमोकार मन्त्र, देवों में वीतरागी जिनेन्द्रदेव, साधुओं में निर्ग्रन्थ साधु, गुप्तियों में मनोगुप्ति, धर्मों में दया, व्रतों में शील, सम्यक्त्व के अङ्गों में वात्सल्य, देवाङ्गनाओं में शचि, रसों में लवण, वचनों में सत्यवचन, तपों में वैय्यावृत्य मुख्य है उसी प्रकार सभी दानों में आहारदान मुख्य है।

आहारदान में सभी दान

आहारदाणे सव्व-दाणं गयपादे सव्वपादं व।
बीये रुक्खोव्व तहा, रयणायरे सव्वसरिदा व॥123॥

जिस प्रकार हाथी के पाँव में सबके पाँव, बीज में वृक्ष समुद्र में सभी सरिताएँ समाहित हो जाती हैं उसी प्रकार आहारदान में सभी दान समाहित हैं।

आहार ही औषधि

छुहं महारोयं चिय, लोयमण्णं हरेदि आहारो दु।
परमोसहि-माहारं, विणा होज्ज सरीरं जिण्णं॥124॥

क्षुधा महारोग है, यह लोक में मान्य है। आहार उस क्षुधा महारोग को हर लेता है। आहार परमौषधि है इसके बिना शरीर जीर्ण हो जाता है।

आहारदान में ज्ञानदान

आहारेण सक्केदि, तच्चचिंतणं झाणं सज्झायं।
तवं कुणिदुं तं अदणदाणे मण्णे णाणदाणं॥125॥

आहार से ही साधक तत्त्वचिन्तन, ध्यान, स्वाध्याय व तप करने में समर्थ होता है। अतः आहारदान में ज्ञानदान माना जाता है।

आहारदान में अभयदान

आहारेण विणा णो, सक्का पाणा ठइदुं सरीरम्मि।
तं आहारदाणम्मि, अभयदाणं पि विणिद्दिट्ठं॥126॥

आहार के बिना प्राण शरीर में ठहरने में शक्य नहीं हैं। अतः आहारदान में अभयदान भी निर्दिष्ट है।

छुहाहारगाहारो, बलुच्छाह-बुद्धि-वड्ढगो णिच्चं।
आहारदाण-समं ण, अण्णं कं पि दाणं कया वि॥127॥

आहार क्षुधा नष्ट करने वाला है, नित्य बल, उत्साह व बुद्धि का वर्द्धक है। आहारदान के समान अन्य कोई भी दान कदापि नहीं है।

कुपात्रदान मोक्ष का हेतु नहीं

पडिद-जलबिंदू सादि-णक्खत्ते मोत्तिअं च सिप्पीए।
महुररस-मिक्खुदंडे, कप्पूरो कदलीपत्तम्मि॥128॥

जह तह पत्तदाणं पि, सग्गापवग्ग-कारणं भोयाण।
णेव सिवहेदू किण्णु, कुपत्तदाणं कुभोयाणं॥129॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार सीप में स्वाति नक्षत्र में पड़ी जल की बूंद मोती, इक्षुदण्ड में पड़ी जल की बूंद मधुर रस, केले के पत्र में पड़ी जल की बूंद कर्पूर हो जाती है उसी प्रकार पात्रदान भोगों का तथा स्वर्ग व अपवर्ग का कारण है। किन्तु कुपात्रदान कुभोगों का हेतु है, मोक्ष का कारण कदापि नहीं है।

सुपात्रदान विपुलफल दाता

लहिय जोग्ग-पासाणं, सुपुण्णजोगेणं सिप्पिगो घडदि।
परमप्पसुमुत्तीए, णिय-सक्कलाए जह अहवा॥130॥

सुजोग्गो-चित्तयारो, पाउणित्ता बहुविहवण्णं रयदि।
अदिसय-सुंदर-चित्तं, सज्जणमणहारगं णिच्चं॥131॥

णिम्माणेदि सुंदरं, वत्थं कोलिओ लहित्ता सुत्तं।
अजोग्गो पडयारो ण, समत्थो णिम्मिदुं सुवत्थं॥132॥

एगं सुजोग्ग-बीअं, लहिय विउलफलं उव्वराभूमी।
दायदि सुपत्तदाणं, तह णियमादो दु भव्वाणं॥133॥ (चउक्कं)

जैसे पुण्ययोग से योग्य पाषाण को प्राप्तकर शिल्पी अपनी श्रेष्ठ कला से परमात्मा की मूर्ति गढ़ देता है अथवा सुयोग्य चित्रकार बहुत प्रकार के वर्णों को पाकर सज्जनों के चित्तहारक अतिशय सुन्दर चित्र की रचना कर देता है अथवा जुलाहा धागे को प्राप्त कर सुन्दर वस्त्र का निर्माण करता है जबकि अयोग्य वस्त्रकार श्रेष्ठ वस्त्र बनाने में समर्थ नहीं होता अथवा उर्वराभूमि एक सुयोग्य बीज को प्राप्त कर विपुल फल देती है उसी प्रकार भव्यों के लिए सुपात्रदान नियम से विपुल फल देने वाला होता है।

आहारदान से महापुण्यफल प्राप्ति

देदि पुट्ठिमं खीरं, धेणू तिणं अवि जह खादिदूणं।
तह सुपत्तदाणफलं, लहंति उवासगा णियमेण॥134॥

जिस प्रकार गाय तृण खाकर भी पौष्टिक दूध देती है उसी प्रकार उपासक नियम से सुपात्रदान के फल को प्राप्त करते हैं। अर्थात् जैसे गाय घास खाकर दूध देती है उसी प्रकार पात्र (मुनि) अल्पाहार ग्रहण करते हैं और उपासकों के लिए विपुल पुण्यफल को देते हैं।

सुपात्रदान बिना मोक्ष नहीं

विणा सुपत्तदाणेण, णो को वि सिवमग्गी सिवो कया वि।
अप्पभवे लहदि सिवं, सुपत्तदाणेण भत्तीए॥135॥

सुपात्रदान के बिना कोई भी मोक्षमार्गी कदापि सिद्ध नहीं होता। भक्तिपूर्वक सुपात्रदान से जीव अल्पभव में मोक्ष प्राप्त करता है।

पात्रदान की महिमा

सरस्सदी हि समत्था, कहिदुं माहच्चं पत्तदाणस्स।
केवलणाणी जाणदि, सव्वदुक्खप्पणासगं तं॥136॥

सरस्वती ही सुपात्रदान के माहात्म्य को कहने में समर्थ है। केवलज्ञानी ही सुपात्रदान के माहात्म्य को जानते हैं। वह सुपात्रदान सर्व दुःखों का नाश करने वाला है।

सुपात्रदान का फल

लहदि मिच्छादिट्ठी वि, सुभोयभूमिं सुपत्तदाणेणं।
णरसुरसोक्खं भुंजिय, कमसो वरपरमेट्ठिपदं पि॥137॥

मिथ्यादृष्टि जीव भी सुपात्रदान से सुभोगभूमि प्राप्त करता है। वह मनुष्य व देव के सुख को भोगकर क्रमशः श्रेष्ठ परमेष्ठी पद को प्राप्त करता है।

सम्मादिट्ठी भुंजदि, भव-वरसोक्खं सुपत्तदाणेणं।
पणकल्लाणविहूदिं, लहिय होदि लोयग्गवासी॥138॥

सम्यग्दृष्टि जीव सुपात्रदान से संसार के श्रेष्ठ सुखों को भोगता है। वह पञ्चकल्याणक की विभूति प्राप्त कर लोकाग्रवासी होता है।

रायाहिरायो महारायो जीवो आहारदाणेण।
मंडलीगो बलो अवि, चरमसरीरी कामदेवो॥139॥

आहारदान से जीव राजाधिराज, महाराज, मण्डलीक, बलदेव, कामदेव और चरमशरीरी भी होते हैं।

भोयभूमिजो इंदो, चक्की तित्थो आहारदाणेण।
होदि उत्तमदायगो, णवहाभत्तीए विहीए॥140॥

विधिपूर्वक नवधाभक्ति से आहारदान देने से जीव भोगभूमिज, इन्द्र, चक्रवर्ती व तीर्थंकर होता है।

णाणावरणिज्ज-खओवसमो वड्ढेदि सुपत्तदाणेण।
दंसणावरणीयस्स, विणस्संति असादा विग्घं॥141॥

सुपात्रदान से जीव का ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम वृद्धिङ्गत होता है, दर्शनावरणी का क्षयोपशम वृद्धिङ्गत होता है एवं असातावेदनीय व अन्तराय कर्म नष्ट हो जाते हैं।

सम्मत्ते चारित्ते, सुइत्तं वड्ढदि भावसुदणाणं।
विरागो तवो झाणं, पुण्णिदुणा सिंधुणीरं व॥142॥

विहवो कित्ती णंदो, णेहो पदिट्ठा सुहं धम्मरुई।
वड्ढदि पत्तदाणेण, मिअंगोव्व हु सुक्कपक्खम्मि॥143॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार पूर्ण चन्द्र से समुद्र का जल बढ़ता है उसी प्रकार सुपात्रदान से सम्यक्त्व व सम्यक् चारित्र में निर्मलता बढ़ती है, भावश्रुतज्ञान, वैराग्य, तप व ध्यान वृद्धिङ्गत होता है। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान वैभव, कीर्ति, आनन्द, स्नेह, प्रतिष्ठा, सुख व धर्मरुचि वृद्धिङ्गत होती है।

आहारदान सम कोई दान नहीं

गयहयगोभूमीण, रयणजडिद-सुवण्णरयदपत्ताण।
वा कण्णादाणं अवि, णो समं आहारदाणं व॥144॥

हाथी, घोड़ों, गाय व भूमियों का दान, रत्नजड़ित स्वर्ण-रजत के पात्रों का दान अथवा कन्याओं का दान भी आहारदान के समान नहीं है।

पात्रदान में प्रसिद्ध

अदणदाणे पसिद्धा, सिरिसेण-सेयंस-कुबेरकंता।
सुकेतु-चंदणबाला, भरदुद्दायणो अग्गिला य॥145॥

राजा श्रीषेण, श्रेयांस, कुबेरकान्त, सुकेतु, चन्दनबाला, भरत चक्रवर्ती, राजा उद्दायन और अग्निला ये आहारदान में प्रसिद्ध हुए।

संकिलेसेण रोया, पावुदयेण पुण्णखीणे देहे।
करेज्ज स-भाव-ममलं, जदणेण ताण णिवत्तीए॥146॥

पाप के उदय से, सङ्क्लेश भावों से व पुण्य के क्षीण होने पर शरीर में रोग होते हैं। उन रोगों की निवृत्ति के लिए यत्नपूर्वक अपने भाव निर्मल करने चाहिए।

औषधिदान

रोयो सरीर-सीलं, जणदि णेव अदिसय-पुण्णुदयेणं।
वरं असादुदयेणं, संभवो सो चरमदेहे वि॥147॥

रोग शरीर का स्वभाव है। अतिशय पुण्य के उदय से रोग शरीर में उत्पन्न नहीं होता किन्तु असाताकर्म के उदय से वह रोग चरमशरीर में भी सम्भव है।

जिणवयणं रयणत्तय-मोसही आमय-णिवारणत्थं च।
किण्णु ववहारे सया, सुद्धभेसजदाणं करेज्ज॥148॥

रोग निवारण के लिए सदा जिनवचन व रत्नत्रय औषधि है किन्तु व्यवहार में सदा शुद्ध औषधि का दान भी करना चाहिए।

अशुद्धौषधि दान परिहार

अभक्खं णेव कया वि, दाएज्ज चिय सावगो पत्ताणं।
असुद्धोसही वि पाव-कारणं कुभोयधरादीण॥149॥

श्रावकों को पात्रों को अभक्ष्य कदापि नहीं देना चाहिए। अशुद्ध औषधि पाप व कुभोगभूमि आदि की भी कारण है।

अनुभूत व अनुकूल औषधिदान

आउव्वेयं ण पढिय, मेत्त-मणुभाविद-मणुऊलं णवरि।
सुपत्ताणं ओसहिं, दाएज्ज पइडि-अणुसारेण॥150॥

सुपात्रों को औषधि मात्र आयुर्वेद पढ़कर नहीं अपितु उनकी प्रकृति के अनुसार अनुभूत व अनुकूल औषधि देनी चाहिए।

अपथ्य भोजन परिहार

ओसहिं सुदायंतो, णो देज्ज अपत्थभोयणं कया वि।
तं सुट्ठु विहीइ उइद-अणुवादे चिय आरोग्गस्स॥151॥

औषधि देते हुए कभी भी अपथ्य भोजन नहीं देना चाहिए। आरोग्य हेतु उसे श्रेष्ठ विधि से उचित अनुपात में देना चाहिए।

औषधि दान की महिमा

सुद्ध-फासुग-मोसहिं, देज्ज सुपत्ताण रोय-हरणत्थं।
तादु णिरोय-सुदेहं, लहदि वरसंघडणं दादू॥152॥

श्रावक सुपात्रों के रोग नाश के लिए उन्हें शुद्ध व प्रासुक औषधि देते हैं। उससे दाता निरोगीदेह व उत्कृष्ट संहनन को प्राप्त करते हैं।

लहदि ओसहिदाणेण, सोक्खं उक्किट्ठ-भोयभूमीए।
कप्पसुरदिव्वसोक्खं, चक्कि-तित्थयरादीणं वा॥153॥

औषधिदान से जीव उत्कृष्ट भोगभूमि के सुख, कल्पवासी देव, चक्रवर्ती वा तीर्थङ्कर आदि के दिव्य सुखों को प्राप्त करता है।

परमविसुद्धभावेहि, वर-दायगो दु ओसहि-दाणेणं।
मोक्खंतं णो कया वि, लहदि असज्झं महारोयं॥154॥

जो उत्तम दाता परमविशुद्ध भावों से औषधिदान देता है वह मोक्ष पर्यन्त कदापि असाध्य व महारोग को प्राप्त नहीं करता।

स्वन्यायार्जित धन से दान

अच्चासण्ण-भव्वाण, खयंति सिग्घं सव्वविहं रोयं।
सगणायज्जिद-धणेण, ओसहिदाणेण सुपत्ताण॥155।

सुपात्रों के लिए स्वन्यायार्जित श्रेष्ठ धन से औषधिदान देने से अत्यासन्न भव्यों के सभी प्रकार के रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

ओसहीए पत्ताण, वत्तलाहो संजमो तवो तादु।
वरझाणविड्ढी तादु, लहदि वरगदिं सिवं दादू।।156।।

औषधि से पात्रों के स्वास्थ्य लाभ होता है। उस स्वास्थ्य लाभ से उनके संयम व तप होता है। उससे उत्तम ध्यान की वृद्धि होती है। अतः सुपात्रों को औषधिदान देने से दाता श्रेष्ठगति व मोक्ष प्राप्त करता है।

खओवसमो वड्ढेदि, विग्घकम्माणं ओसहि-दाणेण।
अचिंतसत्ती य असुह-कम्माणि समंति खयंति वा।।157।।

औषधिदान देने से अन्तराय कर्म का क्षयोपशम वृद्धिङ्गत होता है, अचिन्त्य शक्ति वृद्धि को प्राप्त होती है तथा अशुभ कर्म उपशमित होते हैं या क्षय को प्राप्त होते हैं।

णिप्पज्जंति सरीरे ओसहिदाणेण दायगस्स।
मीणक्काइ-सुचिण्हं, ओहिणाणं सुसंजमादी।।158।।

औषधिदान से दाता के शरीर में मीन, सूर्य आदि शुभ चिह्न, अवधिज्ञान व सुसंयमादि उत्पन्न होते हैं।

औषधिदान से पाप क्षय

पस्सित्तु रोयि-पत्तं, ण देदि वर-मोसहिं सुविहीइ जो।
किं ण खयदि सगपुण्णं, णो संगहदे य पावं सो।।159।।

जो दाता पात्र की रोगी देह को देखकर भी विधिपूर्वक उत्तम औषधि नहीं देता तो वह अपने पुण्य का क्षय और पाप का सङ्ग्रह क्यों नहीं करता अर्थात् अवश्य करता है।

औषधिदान के विरोध से पुण्य क्षीण

सुक्कंत-सरणीरं व, गिम्हे खीयमाणिंदुव्व असिदे।
गिहत्थ-पुण्णं पि सया, ओसहिदाणस्स विरोहेण॥160॥

औषधिदान के विरोध से ग्रीष्मऋतु में सूखते हुए जलाशय के जल के समान और कृष्णपक्ष में क्षीण होते हुए चन्द्रमा के समान गृहस्थ का पुण्य भी सदा क्षीण हो जाता है।

साधुओं के स्वास्थ्य की रक्षा

सुदा-रक्खग-जणगोव्व, गब्भत्थ-सिसु-सुरक्खगा-मादुव्व।
तवाइ-रक्खग-जदीव, गेही रक्खेज्ज जदि-वत्तं॥161॥

जिस प्रकार पिता बेटी की रक्षा करता है, माँ गर्भस्थ शिशु की रक्षा करती है और यति तप आदि की रक्षा करता है उसी प्रकार गृहस्थ को साधुओं के स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए।

सम्म-मोसहिदाणेण, सावया सगणायज्जिदवव्वेण।
वेज्जावच्चेण जदी, लहंति वत्तं सुसंघडणं॥162॥

श्रावक स्व न्यायार्जित द्रव्य के द्वारा सम्यक् औषधिदान से व मुनि वैय्यावृत्ति से स्वास्थ्य लाभ एवं श्रेष्ठ संहनन को प्राप्त करते हैं।

औषधिदान में प्रसिद्ध

सिरिकिण्हो णायसिरी, जीवंधरो तुंकारी य सुहगो।
णंदिसेणो पसिद्धो, वत्तदायग-ओसहिदाणे॥163॥

श्रीकृष्ण, नागश्री, जीवन्धर, तुङ्कारी, सुभग ग्वाला व नन्दिषेण मुनिराज आरोग्य को देने वाले औषधिदान में प्रसिद्ध हुए।

सम्यग्ज्ञान से अज्ञान नाश

विज्जंतण्णाण-तमं, अप्पपदेसेसुं सण्णाणेणं।
णस्सदि जह लोय-तमं, अक्कादीणं पयासेणं॥164॥

सम्यग्ज्ञान से आत्मप्रदेशों में विद्यमान अज्ञानरूपी अन्धकार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्य आदि के प्रकाश से लोक का अन्धकार नष्ट हो जाता है।

सम्यग्ज्ञान का हेतु

जिणवयणं मुणिवयणं, पणगुरुथुदी सण्णाण-सुहेदू य।
सज्झाओ विणयो तह, णाणावरण-खओवसमस्स॥165॥

जिनवचन, मुनिवचन, पञ्चगुरुओं की स्तुति, स्वाध्याय और विनय, ये ज्ञानावरण के क्षयोपशम व सम्यग्ज्ञान के हेतु हैं।

संवेगादि का निमित्त-सम्यग्ज्ञान

सण्णाणं सुणिमित्तं, संवेग-वेरग्ग-मित्तिदयाणं।
भत्तीइ परंपराइ, इच्छा-णिरोहणस्स वि तहा॥166॥

सम्यग्ज्ञान संवेग, वैराग्य, मैत्री, दया, भक्ति तथा परम्परा से इच्छानिरोध का निमित्त भी है।

ज्ञानदान माहात्म्य

भवि-णिम्मल-चित्ते णो , सुहाणुभूदी य णाण-दाणेणं।
सा चिय चक्कवट्टिस्स, असंभवो सव्वभोगेहिं॥167॥

ज्ञानदान से भव्य के निर्मल चित्त में जो सुख की अनुभूति होती है वह अनुभूति सभी भोगों से चक्रवर्ती के भी असम्भव है।

तमणासग-वत्थुपयासगो अप्पजोदिधारगदीवोव्व।
मिच्छत्तं अवि णस्सदि, सुपत्ताणं णाण-दाणेण॥168॥

जिस प्रकार अल्पज्योति का धारक दीपक भी अन्धकार का नाशक व वस्तु का प्रकाशक है उसी प्रकार सुपात्रों के लिए ज्ञानदान देने से मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है।

भवी सुणाणदाणेण, पावंति परमविसुद्धचारित्तं।
सम्मत्तं सण्णाणं, अचलं णिम्मलं चारित्तं॥169॥

सम्यक् ज्ञानदान से भव्य जीव सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अचल निर्मल चारित्र व परमविशुद्ध (यथाख्यात) चारित्र को प्राप्त करते हैं।

शास्त्रदानी का पुण्य अकथ्य

जिणपणीदं सुसत्थं, देदि सुपत्ताणं सवरहिदत्थं।
जो तस्स को समत्थो, पुण्णं कहिदुं इह लोयम्मि॥170॥

जो स्वपर हित के लिए सुपात्रों को जिन प्रणीत सम्यक् शास्त्र को देता है उसके पुण्य को कहने में इस लोक में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

चदुणाणधारगो गणहरो सुदकेवली इड्ढिजुत्तो वि।
भासिदुं अक्खमो संपुण्णणाण-दाणस्स सुफलं॥171॥

ऋद्धियुक्त, चार ज्ञान के धारी गणधर देव व श्रुतकेवली भी सम्पूर्ण ज्ञानदान के फल को कहने में असमर्थ हैं।

ज्ञानावरण क्षयोपशम का हेतु

विज्जत्थीण णिमित्तं, विज्जज्झयणम्मि जो वि भव्वो तं।
णाणावरण-कम्मस्स, विसिट्ठ-खओवसम-हेदू य॥172॥

जो कोई भी भव्यजीव विद्यार्थियों के विद्या अध्ययन में निमित्त है उसका वह शुभ कार्य ज्ञानावरण कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम का हेतु है।

शास्त्र प्रकाशन महिमा

जिणवयणं दु मुणीहिं, विरइद-मागमो पगासणं तस्स।
करावदि स-णायज्जिद-धणेण जो भावि-जिणो सो॥173॥

मुनियों के द्वारा रचित जिनेन्द्र भगवान के वचन आगम है। जो स्वन्यायार्जित धन से उसका प्रकाशन कराता है वह भावी जिनेन्द्र है।

ज्ञानदान चित्तसन्तुष्टि का हेतु

अण्णं णीरं णियमा, जह संतुट्ठिकारगं सरीरस्स।
तह सण्णाण-दाणं पि, महाहेदू चित्त-तुट्ठीइ॥174॥

जैसे अन्न व नीर नियम से देह को तुष्ट करने वाले हैं उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान का दान भी चित्त की सन्तुष्टि का महाहेतु है।

चार अनुयोग, चार ज्ञान के हेतु

चउ-अणुजोगं पढमं, करणं चरणं दव्वं खलु सक्कं।
चउणाणं पदायिदुं, खयिदुं चउगदिं कसायं च॥175॥

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग व द्रव्यानुयोग ये चार अनुयोग चार ज्ञान को देने में समर्थ हैं एवं चार गति व चार कषाय का क्षय करने में समर्थ हैं।

प्रथमानुयोग का प्राधान्य

पढमत्तादु पहाणं, पढमाणुजोगं सव्वसत्थेसुं।
करणं चरणं दव्वं, अग्गे अग्गे पहाणं पुण॥176॥

प्रथम होने से सर्वशास्त्रों में प्रथमानुयोग प्रधान है। करणानुयोग, चरणानुयोग व द्रव्यानुयोग पुनः आगे-आगे प्रधान होते हैं।

चार अनुयोग का स्वाध्याय

णियकल्लाणाकंखी, कुणदु सज्झायं चउ-अणुजोगाण।
उविक्खणीयो दु णेव, एगक्खरो वि जिणागमस्स॥177॥

जिनागम का एक भी अक्षर उपेक्षा के योग्य नहीं है। निज कल्याण के आकाङ्क्षी को चारों अनुयोगों का स्वाध्याय करना चाहिए।

स्वाध्याय का फल

मंदं कुव्विदुं खयं, सग-राय-दोस-मोहाणं अहवा।
कुणदि सया सज्झायं, किं णो होज्ज केवलि-जिणो य॥178॥

जो अपने राग-द्वेष व मोह को मन्द अथवा क्षय करने के लिए सदा स्वाध्याय करता है फिर वह केवली जिन क्यों नहीं होता? अर्थात् अवश्य होता है।

सुसत्थ-सज्झायेणं, मिच्छत्तं असंजमं अण्णाणं।
गलदि रायं च दोसं, खयदे मच्छरो कालुस्सं॥179॥

सुशास्त्रों के स्वाध्याय से मिथ्यात्व, असंयम व अज्ञान गल जाता है तथा राग, द्वेष, मात्सर्य व कलुषता नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

सज्झायेण कसायुक्कस्सं खयदि णिसा व अक्कुदयेण।
मोह-खयेण पेज्जं व, मिच्छत्तं व जिणदंसणेण॥180॥

जिस प्रकार सूर्य के उदय से रात्रि, मोह के क्षय से राग और जिनेन्द्रप्रभु के दर्शन से मिथ्यात्व नष्ट हो जाता है उसी प्रकार स्वाध्याय से कषायों का उत्कर्ष क्षय को प्राप्त हो जाता है।

तुलाधार-पक्खेगे, जवोवयार-पूया तित्थजत्ता।
विदिये च सत्थदाणं अहिय-गुरुत्तं दु सव्वादो॥181॥

तराजू के एक पलड़े पर जप, उपकार, पूजा व तीर्थयात्रा को रखा जाए और दूसरे पर शास्त्रदान हो तो उन सबसे अधिक भारी शास्त्रदान वाला पलड़ा ही होगा।

ज्ञानदान बिना नरजन्म विफल

जोदिं विणा णयणं व, पाणं विणा देहोव्व णिप्फलं दु।
जीवणं पि माणुसस्स, विणा हि सण्णाण-दाणेणं॥182॥

जिस प्रकार ज्योति के बिना नेत्र और प्राण के बिना शरीर निष्फल है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान के दान के बिना मनुष्य का जीवन भी निष्फल है।

शास्त्रों से जिनशासन की स्थिति

जावदु सुहसत्थ-ठिदी, तावदु संविड्ढी रयणत्तयस्स।
चउविह-संघ-ट्ठिदी वि, ठिदी तहा दु जिणसासणस्स॥183॥

जब तक शुभ सम्यक् शास्त्रों की स्थिति है तब तक रत्नत्रय की संवृद्धि है और तब तक ही चतुर्विध संघ की स्थिति तथा जिनशासन की भी स्थिति है।

ज्ञान-ज्ञानी की विनय आवश्यक

कुणंति विणयं भत्तिं, जिणसत्थाणं तह सण्णाणीणं।
जे के वि सुभव्वा ते, पावंति भवसायर-तीरं॥184॥

जो कोई भी भव्यजीव जिनशास्त्रों व सम्यग्ज्ञानियों की विनय व भक्ति करते हैं वे संसार सागर के तट को प्राप्त करते हैं।

ज्ञानादि का अविनय दुर्गति का हेतु

णाणस्स णाणुवयरण-णाणीण कुव्वदि अविणयं जो सो।
लहदि दुग्गदिं दुक्खं, पमादकसायण्णाणेहिं॥185॥

जो प्रमाद, कषाय व अज्ञान से ज्ञान, ज्ञानी व ज्ञानोपकरण का अविनय करता है, वह दु:ख व दुर्गति को प्राप्त करता है।

देव, शास्त्र, गुरु पर क्रोधी का सब नष्ट

जो को वि दुट्ठ-मूढो, सावयो सिस्सो वदी संजमी वि।
जिण-गुरु-धम्म-सत्थाण, कुप्पेदि किंचिवि सिविणम्मि वि॥186॥

सण्णाणं संजमो य, सुगुणं तवो वदं धम्मज्झाणं।
सुहं संती य विहवो, विणस्सेदि तस्स णियमादो॥187॥

जो कोई भी दुष्ट, मूर्ख, श्रावक, शिष्य, व्रती या संयमी भी जिनेन्द्रप्रभु, निर्ग्रंथ गुरु, जिनधर्म वा शास्त्रों पर स्वप्न में भी किंचित् भी क्रोध करता है उसका सम्यग्ज्ञान, संयम, सुगुण, तप, व्रत, धर्मध्यान, सुख, शान्ति व वैभव नियम से नष्ट हो जाता है।

शास्त्र नष्ट करने से पुण्य नष्ट

अण्णाण-कसायेहिं, जो को वि णस्सदि जिणसत्थं तस्स।
खयदि सुह-संति-हेदू, सुपुण्णं च पुण्णणिमित्तं पि॥188॥

जो कोई भी अज्ञान व कषाय से जिनशास्त्रों को नष्ट करता है, सुख व शान्ति का कारण उसका पुण्य नष्ट हो जाता है और पुण्य के निमित्त भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

स्वाध्यायादि में विघ्न से दुर्गति

णाणीणं सज्झाये, कुणदि विग्घं जो माणबुद्धीए।
संजम-तव-साहणासु, लहदि तिव्वदुहं दुग्गदीसु॥189॥

जो अहङ्कारबुद्धि से ज्ञानीजनों के स्वाध्याय, संयम, तप व साधना में विघ्न करता है वह दुर्गतियों में तीव्र दुःख को प्राप्त करता है।

शास्त्रनाश से विकलांगादि

वियलंगो बहिरंधो, दरिद्द-मूढा कुज्जो मदि-भट्टो।
णिंद-पावी कुरूवो, जिणसत्थ-विणासगो हवेदि॥190॥

जिनशास्त्रों का नाश करने वाला विकलाङ्ग, बहरा, अन्धा, दरिद्र, मूर्ख, कूबड़ा, मतिभ्रष्ट, निन्द्य, पापी व कुरूप होता है।

जिनधर्म से उदासीन को मुक्ति नहीं

पिदु-सामि-जिणधम्मा य, पडि उदासीणा सुद-भिच्च-भव्वा।
णो पावदि संपत्तिं, किवादिट्ठिं तह णिव्वाणं॥191॥

पिता के प्रति उदासीन बेटा सम्पत्ति को, स्वामी के प्रति उदासीन सेवक स्वामी की कृपादृष्टि को और जिनधर्म के प्रति उदासीन भव्यजीवों को निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती।

जिणसत्थं सण्णाणिं, संजमिं पडि तवसिं उदासीणो।
णेव परमसुदणाणं, पप्पोदि ण केवलं णाणं॥192॥

जिनशास्त्र, सम्यग्ज्ञानी, संयमी व तपस्वी के प्रति उदासीन परमश्रुतज्ञान व केवलज्ञान को प्राप्त नहीं करता।

ज्ञानदान में प्रसिद्ध

णाणदाणेण गोवो, सीहुवदेसग-जुगलजदी लहीअ।
परमणाणं च मुत्तिं, अग्गिभूदि-गुरु-सूरमित्तो॥193॥

ज्ञानदान से ग्वाले ने, सिंह को उपदेश देने वाले दोनों यतियों ने, अग्निभूति के गुरु श्री सूर्यमित्र मुनिराज ने परमज्ञान वा मुक्ति को प्राप्त किया।

अभयदान महाधर्म

विज्जंत-सव्वजीवा, तिलोयम्मि कंखंति पाण-रक्खं।
पाणरक्खा समा णो, को वि धम्मो दु तिक्कालम्मि॥194॥

तीन लोक में विद्यमान सभी जीव प्राणों की रक्षा चाहते हैं। तीनों कालों में स्वपर प्राण रक्षा के समान कोई भी धर्म नहीं है।

सभी दानों का प्राण-अभयदान

पाणोव्व अभयदाणं, सव्वदा सव्वत्थ सव्वदाणाण।
विणा अभयदाणेणं, असंभवो सद्धम्मट्ठिदी॥195॥

अभयदान सर्वदा व सर्वत्र सभी दानों के लिए प्राण के समान है। अभयदान के बिना सद्धर्म की स्थिति असम्भव है।

जीवाणुकंपाए दु, अभयदाणं महाधम्मो समये।
बारसंग-उस्सासो, चउ-अणुजोगाणं बीयं च॥196॥

जीवों पर अनुकम्पा होने से जिनशासन में अभयदान महाधर्म है। अभयदान द्वादशाङ्ग की श्वांस और चारों अनुयोगों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बीज है।

सभी पर दया

अभयदाणेण सव्वा, विस्सस्संति सेट्ठ-जिणसासणम्मि।
जिणधम्मो सिक्खावदि, सव्वा जीवा पडि करुणा हु॥197॥

अभयदान से सभी जीव श्रेष्ठ जिनशासन पर विश्वास करते हैं। जिनधर्म सभी जीवों के प्रति दया सिखाता है।

स्वात्मा के प्रति दयालु

सव्वजीवा पडि दया-धारगो सगचित्ते णिच्छयेणं।
सगप्पं पडि धरदे हु, सुहिजणो महादयाभावं॥198॥

जो सुधीप्राणी अपने चित्त में सभी जीवों के प्रति दयाभाव को धारण करता है वह निश्चय से स्वात्मा के प्रति भी महादयाभाव धारण करता है।

परस्पर उपकार-जिनधर्म

णो मज्झ को वि सत्तू, ण मे चित्ते किंचि वि सत्तुभावो।
परोप्परोपग्गहो जिण-धम्मो समा सव्वजीवा॥199॥

मेरा कोई भी शत्रु नहीं है, मेरे चित्त में किञ्चित् भी शत्रुभाव नहीं है। एक-दूसरे का परस्पर उपकार करना जिनधर्म है। निश्चय से सभी जीव समान हैं।

दान बिना धर्म प्रवृत्ति अशक्य

मूलवज्जिदरुक्खस्स, ठिदि-विड्ढी पुप्फफलुप्पत्ती इव।
असक्का दाणं विणा, पवत्ती खमाइ-धम्मेसुं॥200॥

जिस प्रकार जड़ से रहित वृक्ष की स्थिति, वृद्धि, पुष्प व फल की उत्पत्ति संभव नहीं है उसी प्रकार अभयादि दान के बिना क्षमादि धर्मों में प्रवृत्ति अशक्य है।

अहिंसादि रूप धर्म सुखकर

जीव-रक्खगो धम्मो, पत्तेयं खेत्त-याल-अवत्थासु।
सव्वसुहयरो णिच्चं, अहिंसाइ-रूव-जिणधम्मो॥201॥

धर्म प्रत्येक क्षेत्र, काल व अवस्था में जीवों का रक्षक होता है, वह अहिंसादि रूप जिनधर्म नित्य ही सभी के लिए सुखकर है।

धर्मात्मा

सो जहत्थ-धम्मप्पा, जो सगघादगं पडि अवि दयालू।
सवरघादगो सुधम्म-विहीणो य महापाविट्ठो॥202॥

जो अपने घात करने वाले के प्रति भी दयालु है वह यथार्थ धर्मात्मा है। स्वपर का घात करने वाला सम्यक् धर्म से विहीन और महापापिष्ठ है।

धरती पर भगवान

जीवेग-रक्खगो अवि, विस्से पुज्जो पदिट्ठिदो सुरेहि।
सव्व-रक्खगो जो सो, कहं णो भयवदो भूमीइ॥203॥

एक जीव की रक्षा करने वाला भी विश्व में पूज्य होता है और देवों के द्वारा प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। तब जो सभी की रक्षा करता हो वह धरती पर भगवान क्यों नहीं है? अर्थात् अवश्य है।

अभयदान फल

जीवा रक्खेदि दु जो, तिजोगेहि सद्दिट्ठी धम्मी सो।
सीलव-परोवयारी, णाणी अप्पविहव-भोत्ता य॥204॥

जो तीनों योगों से जीवों की रक्षा करता है वह सम्यग्दृष्टि, धर्मी, शीलवान्, परोपकारी, ज्ञानी और आत्मवैभव का भोक्ता होता है।

खयंति रायचोरग्गि-आमय-अयालमिच्चु-आदीणं च।
दुक्खं अभयदाणेण, लहदि महापद-मप्पविहवं॥205॥

अभयदान से प्राणी के राजा, चोर, अग्नि, रोग, अकालमृत्यु आदि के दुःख नष्ट होते हैं और वह महापद व आत्मवैभव को प्राप्त करता है।

अभयदाणादु जीवो, गंभीर-लोयप्पिय-पुण्णवंतो।
लहदि धण-वाहण-सुहं वत्तं बोहिलाह-समाहिं॥206॥

अभयदान से जीव गम्भीर, लोकप्रिय व पुण्यवान् होता है। वह धन, वाहन का सुख, आरोग्य, बोधिलाभ व समाधि को प्राप्त करता है।

अनुकम्पावान् को मुक्ति प्राप्ति

सव्वभूदेसु वदीसु, कुणदि अणुकंपं सगपाणहियादु।
पावेदि तिलोय-सुहं, पुणो रमदि मुत्तिरमाइ सह।।207।।

सभी प्राणियों पर एवं व्रतियों पर अनुकम्पा जो अपने प्राणों से अधिक करता है वह त्रिलोक के सुख को प्राप्त करता है पुनः मुक्ति रूपी स्त्री के साथ रमण करता है।

कुवचन भी हिंसाकारक

जो दुट्ठो पाविट्ठो, वदिं महव्वदिं पडि धम्मिट्ठं च।
वददि कुवयणं पीडदि, लहदि णिरयस्स महादुहाणि।।208।।

जो दुष्ट व पापी जीव व्रती, महाव्रती व धर्मात्माओं के प्रति कुवचन बोलता है, उन्हें पीड़ा देता है वह नरक के महादुःखों को प्राप्त करता है।

संयमोपकरण दान

जो सुपत्ताण पिच्छिं, देदि तस्स धम्मस्स वंसविड्ढी।
धणविड्ढी सुहसंती, जसकित्ती विउल-एसज्जं।।209।।

जो सुपात्रों के लिए पिच्छी देते हैं उनके धर्म की वृद्धि व वंश की वृद्धि होती है। उनके धनवृद्धि, सुख-शान्ति, यशकीर्ति एवं विपुल ऐश्वर्य होता है।

शौचोपकरण दान फल

अत्थ-बंधु-मित्त-वत्त-लाहं कमंडलु-दाणेण भव्वो।
रज्ज-माण-पदं लहदि, पदिट्ठं सुकित्तिं तिलोए॥210॥

पात्रों को कमण्डलु देने से भव्यजीव धन, बन्धु, मित्र, आरोग्यलाभ, राज्य, मान, पद, प्रतिष्ठा व तीनों लोक में कीर्ति प्राप्त करता है।

उपकरण दान

संथारासण-मादिं, णिरवज्जं संजमसाहणं देदि।
सुभत्तीए पप्पोदि, णाणाइ-गुणा अप्पसुहं पि॥211॥

जो पात्रों को भक्तिपूर्वक निर्दोष संयम के साधन, संस्तर (कुशादि की शैय्या) आसनादि देते हैं वे ज्ञानादि गुणों को व आत्मसुख को भी प्राप्त करते हैं।

वस्त्रदान फल

जो कुणदि वत्थदाणं, अज्जाणं खुड्डय-खुड्डियाणं च।
वा वदीण सो भुंजदि, विउलवर-विहवं सुइरंतं॥212॥

जो जीव आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका अथवा व्रतियों को वस्त्रदान करता है वह सुचिरकाल तक विपुल उत्कृष्ट वैभव को भोगता है।

अभयदान में प्रसिद्ध

अभयदाणे पसिद्धा, अणंगसरा सूगरो मिगसेणो।
जमपालो मादंगो, भील-महीवाल-मेघरहा॥213॥

अनङ्गसरा, शूकर, मृगसेन-धीवर, यमपाल चाण्डाल, पुरुरवा व खदिरसार भील, महीपाल तथा मेघरथ अभयदान में प्रसिद्ध हुए।

चतुर्दान फल

वरभोयमाहारेण, लहदि केवलिपदं णाणदाणेण।
ओसहीइ वरवत्तं, णिच्चं णिब्भयत्त-मभयेण॥214॥

आहारदान से जीव उत्कृष्ट भोग, ज्ञानदान से केवलीपद, औषधिदान से उत्तम स्वास्थ्य तथा अभयदान से शाश्वत निर्भयता को प्राप्त करता है।

दान निर्देश

जिणबिंब-मंदिराणं, मठ-वसदीणं गंथ-पगासणस्स।
जिणुच्छवस्स सुपत्ताण, तित्थजत्ताइ देज्ज दाणं॥215॥

जिनबिंब, जिनमन्दिर, साधुओं के मठ व वसदि (वसतिका), ग्रन्थ प्रकाशन, जिनोत्सव, तीर्थयात्रा एवं सुपात्रों के लिए दान देना चाहिए।

जिनशासन की स्थिति हेतु मन्दिरादि की स्थापना

जिणसासण-ट्ठिदीए, ठवेज्ज चेइय-चेइयालयाइं।
कित्तिमाणत्थंभं च, जिणसत्थं तहा जिणतित्थं॥216॥

जिनशासन की स्थिति के लिए जिनचैत्य, जिनचैत्यालय, कीर्तिस्तम्भ, मानस्तम्भ, जिनशास्त्र तथा जिनतीर्थों की स्थापना करनी चाहिए।

चतुर्विध दत्ती

सम्मगिहत्थाणं सम-अणवय-करुणा-पत्तदत्ती तहा।
आहाराइ-दाणं दु, सुपत्ताण सय पत्तदत्ती॥217॥

सम्यक् गृहस्थों के समदत्ती, अन्वयदत्ती, करुणादत्ती तथा पात्रदत्ती होती है। सुपात्रों को आहारादि देना पात्रदत्ती है।

किलिट्ठाणं दयाए, भोयणोसहि-अण्णसामग्गीणं।
अभयदाणं च करुणादत्ती लोए संसणीया॥218॥

दु:खी जीवों को दयापूर्वक भोजन, औषधि, अन्य आवश्यक सामग्री या जीवनदान देना करुणादत्ती है। यह लोक में प्रशंसनीय है।

वंसपदिट्ठाए धण-कुडुंबाइ-तिप्पणं णियपुत्तस्स।
सयलणवयदत्ती वा, जाणेज्ज लोयववहारम्मि॥219॥

वंश की प्रतिष्ठा के लिए अपने पुत्र को धन-परिवारादि देना लोकव्यवहार में सकल अथवा अन्वयदत्ती जाननी चाहिए।

णियसमाणाहो अण्ण-धम्मीण किरियामंतवदादीहि।
धण-कण्णा-सुवण्णाइ-दाणं समधीइ समदत्ती॥220॥

क्रिया, मन्त्र वा व्रतादि से जो अपने समान है अथवा अन्य धर्मात्माओं के लिए समान बुद्धि से धन, कन्या, स्वर्णादि देना समदत्ती है।

दान के अतिचार

सुपत्ताणमुविक्खणं, कत्तव्वविम्हरणं लोहजुई य।
भत्तिहीणत्तं काल-उल्लंघणं दाणदियारा॥221॥

सुपात्रों की उपेक्षा करना, कर्त्तव्यों का विस्मरण, लोभ-युक्तता, भक्तिहीनता एवं काल का उल्लङ्घन ये दान के अतिचार हैं।

निर्माल्य भक्षी कौन

कडुअ दाण-संकप्पं, णेव देदि जो दाणं भत्तीए।
णिम्मल्लं भुंजदि सो, दारिद्दो य दुग्गदि-पत्तो॥222॥

जो दान का सङ्कल्प करके भक्तिपूर्वक दान नहीं देता वह निर्माल्य का भक्षण करता है, निर्धन एवं दुर्गति का पात्र होता है।

सगणायज्जिद-धणस्स, चदुत्थंसं देज्ज पुण्णकज्जाइ।
सो णिम्मल्ल-भोयीव, पावी जो देदि दाणं णो॥223॥

जो अपने न्यायार्जित धन का चौथा भाग पुण्य कार्य के लिए दान नहीं देता वह निर्माल्य का सेवन करने वाले के समान पापी है।

अशुद्ध दान पाप का कारण

असुद्धदव्वाण दाण-मसुह-खेत्ते याले भावेहि वा।
अण्णायज्जिद-धणेण, दुरिद-दुग्गदि-दुक्ख-हेदू य।।224।।

अन्यायपूर्वक अर्जित किए गए धन से, अशुभ क्षेत्र व काल में, अशुभ भावों से अशुद्ध द्रव्य का दान पाप, दुर्गति व दु:ख का कारण है।

दान नहीं करने वाले को सुख नहीं

दाणविहीणो मूढो, णिद्धणो तह पावी कसायजुदो।
इहपरभवे ण सोक्खं, वहदि णिय-जीवणं तिरियोव्व।।225।।

जो दान नहीं करता वह मूर्ख, निर्धन, पापी, कषाययुक्त होता है। वह इस भव में व परभव में भी सुख प्राप्त नहीं करता एवं तिर्यञ्च के समान अपना जीवन ढोता है।

अन्तिम मङ्गलाचरण

अरिहाइ-पंच-देवं, संतिं पायं जयकित्तिं सूरिं।
देसं विज्जाणंदं, णमामि पच्चक्ख-उवयारिं।।226।।

अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठी एवं चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी, भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी एवं मेरे प्रत्यक्ष उपकारी सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसन्त आचार्य श्री विद्यानन्द जी गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थकार की लघुता

सग-भाव-विसुद्धीए, अप्पबुद्धीए खयेदुं कम्मं।
विरइदो दाण-सारो, आइरिए-वसुणंदिणा मए।।227।।

कर्मक्षय के लिए, भावविशुद्धिपूर्वक मुझ आचार्य वसुनन्दी ने अल्पबुद्धि से 'दानसार' नामक ग्रन्थ की रचना की।

प्रशस्ति

वीरणिव्वाणद्धम्मि, परमप्पा-लद्धि-परमेट्ठि-गगणे।
पुण्णिमो य पुण्णाहे, सिरिमहावीरदिसयखेत्ते।।228।।

परमात्मा (2), लब्धि (5), परमेष्ठी (5), गगन (0) अर्थात् 2550 वीर निर्वाण संवत् में शुभ दिन श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	**नाम**	**क्र.सं.**	**नाम**
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

57.	आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)	58.	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)
59.	महाणुभावो (महानुभाव)	60.	उववासो (उपवास)
61.	संजम-सारो (संयमसार)	62.	सम्मत्त-सारो (सम्यक्त्व सार)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष

41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान

17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य			
1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य
1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक

4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		• शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कृत

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं
हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।
अणेगंतमयं सिआवायमयं
णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।
जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं
भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।
बारस-अंगेहिं संजुत्तं
लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।
कंठादिवचोकारणरहिदं
तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।
जगमंगल्लं जगकल्लाणिं
पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।